

DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गासाह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No. 891.3
Book No. S18U
Reg No. 3093
(3093)

सहगल प्रकाशन सं० २

उसकी कहानी

सुन्दर श्याम "पर्वेज़"

प्रकाशक
नारायण दत्त सहगल एण्ड सन्ज़
चौक फतहपुरी, देहली ६.

प्रकाशकः—
बलराज सहगल
प्रो० नारायणदत्त सहगल एण्ड संज़
चौक फतहपुरी, देहली

स्वतन्त्र भारत में प्रथम संस्करण २०००)
मूल्य—तीन रुपया चार आना

मुद्रकः—
रतन प्रेस
कूचा घासी राम, देहली

ज्योति, सुरजीत, उर्मिला, कृष्णा, शान्ति, कुन्ती, सावित्री, नाहीद, स्मरना, दमयन्ती और सुमित्री को समर्पित

सुन्दर श्याम "पर्वेज़"

पूर्व कथन

मेरे लिए इस जीवन कथा को पुस्तक के रूप में प्रस्तुत करने का उद्देश्य इस कहानी की रोचकता के अतिरिक्त इस के नायक की स्मृति जीवित रखना भी है— नायक अभी यौवनावस्था में है तथा अन्य पात्र भी जो इस कहानी के प्राण हैं, लग भग सभी जीवित हैं। इस लिए नाम और स्थान सभी बदल दिए गये हैं। कुछ इस लिए भी कि इन के प्रकाशन से कई एक उच्च घरानों के कुल-गौरव के मिट्टी में मिल जाने का भय था। इस बात को छोड़ कर कि कथा के नायक का सामाजिक व वैवाहिक जीवन संकट में न आ जाए, इस घटना को किसी व्यक्ति विशेष के नाम के साथ जोड़ने से पूर्व में पाठकों के समक्ष यह बात स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि वह नाम और स्थान के धोखे में न आएं। क्योंकि वे सब सर्वथा निराधार हैं। इस पर भी यदि कोई भ्रमग्रस्त होने से न रह सके तो यह मेरे बस का रोग नहीं।

एक और बात जो में कथा कहने से पूर्व स्पष्ट कर देना चाहता हूं यह है कि यह एक जीवन कथा है और प्रकृति उपन्यासकार नहीं जो कथा की कड़ियों को परस्पर

मिलाती चली जाए। इस लिए इस पुस्तक के पाठक प्रवाह की अपेक्षा न करें।

हाँ, यदि वह जीवन की नग्न कटुताओं को देखना चाहते हैं तो निश्चित तौर पर यह पुस्तक उन को ऐसी सामग्री देगी जो उन के जीवन के विस्मृत स्वप्नों को नवजीवन दे—आप इसे एक सजीव चित्र पायेंगे।

पहल गाम

२३ सितम्बर, १९४३ सुन्दर श्याम "पर्वेज़"



प्रारम्भ

वह मेरा हार्दिक मित्र है। उसका कोई भी भेद मुझ से छुपा नहीं। यहां तक कि अगर राह चलते में उसकी आंख में कण भी पड़ा तो उसने मुझे बता दिया। परन्तु प्रायः उसकी आंखों में कण नहीं, हृदय में कण्टक चुभा करते हैं जिनकी चुभन सूनी रातों की शीतलता के बावजूद उसकी आत्मा को गर्मी देती रहती है। वह अपने भविष्य के लिए प्रतिदिन नवीन प्रासाद निर्माण करता रहता है। वह इतना भावुक है कि दूसरे के कन्धों पर एक कण भी सहन नहीं कर सकता। परन्तु अपने सिर पर पर्वत आ पड़ने पर भी धैर्य को हाथ से नहीं छोड़ता। अनेक बार सुख का भरा हुआ प्याला उसके हाथों में दिया गया परन्तु होठों तक पहुंचने से पूर्व ही उसके भावुक हाथों से छूट कर टुकड़े २ हो गया। उसकी सफल रातों में भी असफलताएं करवटें लेती हैं। उसके अत्यन्त आनन्द पूर्ण क्षणों में भी निराशा का तत्व मिला रहता है। इन सब बातों के होते हुए भी वह निस्सन्देह एक दिलचस्प व्यक्ति है। और मुझे विश्वास है कि इन पृष्ठों को पढ़ लेने के पश्चात् आप अपने दिल की गहराईयों में उसके लिए सहानुभूति अनुभव करेंगे। यह मेरा अपना विचार है। सम्भव है आप न करें। और यह भी सम्भव है कि वह आपकी सहानुभूति का सर्वथा पात्र ही न हो—

पहला परिच्छेद

वह मेरे चचा का लड़का था और मेरा भाई। हम बचपन में एक साथ खेलते थे और हमारा प्रिय खेल था "शेर, शेर"। यह एक अत्यन्त सादा खेल है। इसमें एक लड़का शेर बनता है और अन्य सब बटोही। अब जो लड़का शेर बनता है वह एक विशेष स्थान को जिसे लक्ष्य कहते हैं, छू कर आता है। इतने में सभी लड़के बिखर जाते हैं। वह लड़का सब की खोज करता है। साथ ही यह भी ध्यान रखता है कि 'लक्ष्य' तक कोई न पहुंच सके। छुपे हुए लड़कों में से प्रत्येक का प्रयास यह होता है कि वह शीघ्राति शीघ्र लक्ष्य तक पहुंचे क्योंकि जो लड़का सब से पहले 'लक्ष्य' तक पहुंच जाय वही दूसरी बार शेर बनने का अधिकारी होता है। और यदि वह अपने इस प्रयत्न में पकड़ा जाय तो फिर वह शेर की दया पर होता है। चाहे दांतों से काटे, चाहे पंजों में दबोच कर खूब झंझोड़े।

खैर, यह तो था वह छोटा सा खेल और उसे खेलने वाले होते थे—प्रायः हम पांच। एक तो वह, आप निश्चय ही उसका नाम जानना चाहेंगे। परन्तु सत्य यह है कि मैं उसका नाम बता नहीं सकता। इसलिए जहां तक इस कथा का सम्बन्ध है, आप मान लीजिए कि उसका नाम सुरेन्द्र है। तो खैर, एक तो था वह, दूसरा मैं स्वयं, तीसरा हवालदार का लड़का बाल मुकन्द, चौथा नाथ, और पांचवां या पांचवीं चीफ़ गुड्स क्लर्क बाबू जयराम की लड़की, ज्योति। मैं उन सब में बड़ा था और मेरी आयु उस समय १२ वर्ष से कुछ ही अधिक

थी। अतः आप अनुमान कर सकते हैं कि अन्य लड़कों की आयु क्या होगी। हां, यह मुझे भली भांति याद है कि वह उन दिनों केवल ६ वर्ष का था क्योंकि कुछ दिन पूर्व उसकी वर्ष गांठ मनाई गई थी और उस अवसर पर उसने मुझे बहुत से गुलाब जामुन चुरा २ कर खिलाए थे। बाबू जयराम की लड़की ज्योति की आयु भी उसके लग भग ही थी।

यह विचित्र बात थी कि जब भी हम खेलने के लिए एकत्र हुए और 'शेर, शेर' खेलने का निश्चय हुआ, सर्व प्रथम वही शेर बना। इसलिए नहीं कि उसके पिता एक उच्च सरकारी पद पर नियुक्त थे, क्योंकि इस आयु के बच्चों में यह भेद भाव होता ही नहीं और न ही इसलिए कि वह हम सब से अधिक बलवान था क्योंकि वह बलवान था ही नहीं। वह तो एक अत्यन्त कोमल और सुन्दर लड़का था जिसके मुख मण्डल से सादगी और भोला पन इस प्रकार बरस रहे थे कि अब जब मैं सोचता हूं तो बार बार २ यह विचार आता है कि उस समय यदि कोई यूनानी भिक्षु, उसे देख लेता तो निश्चय ही उसे देवता बनाने के लिए उठा ले जाता। क्यूपिड को यदि अन्धा न बताया गया होता तो मैं समझता कि सम्भवतः सुरेन्द्र के भेस में क्यूपिड ही धार पर उत्तर आया है। और अब देखिये किस २ का हृदय छेदता है। क्यूपिड बेचारे को अन्धा होने के कारण बाणों का आश्रय लेना पड़ा परन्तु सुरेन्द्र की बड़ी २ आंखें जिनमें बिजलियां करवटें लेती थीं, परमात्मा रक्षा करे, उनसे बच निकलना हर किसी का काम न था। उस समय भी उसकी दृष्टि में उतनी ही गहराई थी जितनी कि अब और कभी २ सोचता हूं कि क्या उस समय भी उन निगाहों के पर्दे के पीछे एक ऐसा ही तूफान उठा हुआ था जैसा कि अब ? और क्या तब भी उन की भाषा को समझना उतना ही कठिन था जितना कि अब ?

लेकिन इन बातों के बावजूद उसमें कुछ ऐसी विशेषता थी कि जब खेल प्रारम्भ होते ही वह कहता "सब से पहले मैं शेर बनूंगा" तो सब तुरन्त मान जाते मानो यह उसका जन्म सिद्ध अधिकार था। सम्भवतः उसका एक कारण यह भी था कि वह अत्यन्त भावुक था। यहां तक कि यदि एक कण भी उस की इच्छा के विरुद्ध हिलता तो जब तक वह उसे वापिस अपने स्थान पर न रख लेता, उसे चैन न आता। इसलिए कोई भी इस साधारण सी बात के लिए उसे रुष्ट न करना चाहता था। मुझे उन्हीं दिनों की एक घटना याद है। स्कूल में छुट्टी हुई। हम सब बस्ते सम्भालने लगे। वह तुरंत बस्ता बगल में दाबकर द्वार की ओर लपका, परन्तु इसके द्वार तक पहुंचते २ दो लड़के कमरे से बाहिर निकल गए और कुछ निकलने ही वाले थे कि इसने सबको रोकते हुए पहले दो लड़कों को भी पुकारा और जब वह कमरे में आगए तो स्वयं खट से बाहिर होगया। पूछने पर केवल इतना कहा कि पहले मुझे बाहिर निकलना था 'क्यों ?' का उत्तर न उस के पास था और न वह दे सका। खैर, बात साधारण थी। आई गई हो गई। परन्तु अब जब मैं इन तत्वों को लेकर उसके जीवन का मनो वैज्ञानिक विश्लेषण करता हूं तो मुझे ऐसे लगता है कि उस चरित्र की जिस का प्रतीक सुरेन्द्र अब है, आज से कई वर्ष पूर्व आधार शिला रखी जा चुकी है।

शेर बनते ही जब वह चोरों की भांति खिलाड़ियों की ओर देखता, लक्ष्य को हाथ लगाकर इनके पीछे भागता तो उसका ध्यान सदा उस ओर होता जिधर ज्योति छुपी होती और यद्यपि इतने में सभी खिलाड़ी 'लक्ष्य' को छू लेते परन्तु वह ज्योति को जहां भी वह होती ढूंढ निकालता और फिर हाथों से पकड़ कर झंझोड़ता और दांतों से काटता। दांतों से काटना तो नाम मात्र ही होता था क्योंकि वह सदा होठों से काटता था।

यह था इस खेल का आदि और अंत और अब २० वर्ष बीत जाने के पश्चात् भी जब मुझे उसकी याद आती है तो मैं सोचता हूं कि उसका स्त्रियों की ओर आरम्भ से ही झुकाव क्या उसे प्रकृति की ओर से मिला था ? क्या जिस समय वह नन्ही ज्योति को दोनों हाथों में लेकर झंझोड़ता था, उस समय भी उसके हृदय में भावनाओं का तूफान आता था और उसकी इन्द्रियां आनन्द अनुभव करती थीं? निश्चित करती होंगी। अन्यथा वह क्यों अन्य सब खिलाड़ियों को छोड़ कर केवल ज्योति के पीछे पागलों की भांति भागता। सम्भव है इन्द्रियों का वह आनंद उस आनंद से भिन्न हो जो एक युवक एक युवती को अपने बाहुपाश में लेकर अनुभव करता है और ऐसा होना सम्भव है। कुछ ही हो वह आनन्द अवश्य अनुभव करता था चाहे वह किसी भी प्रकार का हो। कभी २ मुझे ध्यान आता है। काश ! हम सब पुनः एक स्थान पर एकत्र हो सकें और इस अवस्था में एक बार फिर 'शेर, शेर' खेलें। फिर मैं देखूं कि क्या अब भी वह पागलों की भांति ज्योति के पीछे भागता है। यदि भागता है तो उसका भागना अब भी उसी प्रकार निश्चित है। परन्तु इसके साथ मुझे यह भय भी लगता है कि यदि इस शेर को ज्योति के पीछे खुला छोड़ दिया गया तो सम्भव है कि वह उस गरीब लड़की को निगल ही जाए। शारीरिक तौर पर न सही, मानसिक तौर पर ही सही।

कितना ही समय हम यह खेल खेलते रहे पुराना हो जाने पर भी इस खेल में हमारे लिए उतना ही आकर्षण था और अब भी हम सब काम छोड़कर 'शेर,शेर' खेलने के लिए तैयार हो जाते थे। न जाने यह खेल कब तक जारी रहता कि एकाएक उसके पिताजी का तबादला पेशावर हो गया। सामान सब से पहले बुक करवा कर भेज दिया गया केवल कुछ एक आवश्यक वस्तुएं रख ली गईं।

जिस दिन हम सबको जाना था, सुरेन्द्र ने नवीन वस्त्र धारण कर रखे थे। हमारे सब साथी हमारे आस पास एकत्र थे और सुरेन्द्र उन सबसे हंस २ कर बातें कर रहा था। अपने साथियों से बिछु-ड़ने के दुःख के कोई चिन्ह उसके मुख पर प्रकट न थे बालमुकुन्द के पूछने पर कि पेशावर कितना बड़ा नगर है, उसने जिस ढंग से उत्तर दिया, उससे यह प्रकट होता था कि वह पेशावर को बिना देखे ही प्रेम करने लगा है। और अब इसकी बड़ाई और प्रतिष्ठा का सिक्का अपने सांथियों पर जमाना चाहता है। सम्भवतः इस उत्तर में अपनी बड़ाई दिखाने का भी कोई तत्व निहित हो। तो भी उस समय मैं उसे समझने में असमर्थ रहा। उसने एक गर्व पूर्ण मुस्कान के साथ कहा।

"जी ऐसे २ पचास कस्बे उसमें से निकलते हैं।"

"तब तो वहां इस से बड़ी २ हवेलियां भी होंगी?" नाथ ने दबते हुए कहा।

"जी! ऐसे २ बेडौल मकान तो इसी कस्बे में बनते हैं। पिता जी कहते हैं, वहां हम एक विशाल बंगले में रहेंगे।"

"अच्छा!" ज्योति ने चकित होकर कहा।

"हां जी" उसने ज्योति के गाल पर चुटकी लेते हुए, कहा "और पहले दिन हमारा खाना तहसीलदार के घर होगा।"

यह मैं उस समय भी जानता था और बाद में इस का समर्थन भी हो गया कि उस समय उसका तहसीलदार के घर खाने का उल्लेख करना अपने साथियों को चकित करने मात्र के लिए था। क्योंकि इसमें वास्तविकता नाम को भी न थी। उसने कहीं अपने पिता जी से सुन लिया था कि पेशावर में उन का बङ्गला किसी तहसीलदार के बङ्गले के साथ है। बस, उसने तुरन्त ही अनुमान कर लिया कि पहले दिन उन्हें तहसीलदार के घर खाना खाना होगा। परन्तु मैं इस बात से चकित था

कि इस प्रकार प्रभावित करने वाला स्वर प्रयुक्त करने के बावजूद वह ज्योति से द्वैत न रख सकता था। अन्यथा उसके गाल पर चुटकी लेना, उसके बालों में अंगुलियां फेरना और इन सब से बढ़कर जाती बार उसे चित्रों की एक बड़ी पुस्तक देना और इसके पहले पृष्ठ पर अपने नाम के साथ ज्योति का नाम लिखना –क्या यह सब बातें व्यर्थ थीं ? उस समय यद्यपि इन बातों का मेरे लिए कोई महत्त्व नहीं था परन्तु आज जब मैं इन बातों को उसके चरित्र के प्रकाश में देखता हूँ तो अनुभव करता हूं कि यही वह विशेषताएं हैं जिन पर उसके चरित्र का निर्माण हुआ।

पेशावर आकर हमें सब से पहले इस बात का पता लगा कि जिस बङ्गले में सुरेन्द्र के पिता जी ने रहने का विचार किया था वह एक बड़े बङ्गले का आधा भाग था। शेष आधे में एक सरदार साहिब जो कभी तहसीलदार थे और अब केवल धनवान थे, रहते थे। यह बंगला वास्तव में उन्हीं का था। और चूंकि उनकी आवश्यकता से बहुत अधिक था इसलिए उन्होंने इसका आधा भाग किराये पर दे देना उचित समझा। सुरेन्द्र के पिता इनके पहले किराये दार थे। कुछ दिन तो ऐसे ही सामान आदि ठीक करने में लग गए। फिर जब यह हुमा हुमी कुछ कम हुई तो हमने तहसीलदार साहिब के बंगले की जांच पड़ताल शुरू की। हमने देखा कि इनके और हमारे मकान में कोई अन्तर है तो एक ग्रामोफोन का। उन दिनों ग्रामोफोन हिन्दुस्तान में नए २ आए थे। अब तो गली २ में स्थान २ पर रेडियो चहक रहे हैं परन्तु उन दिनों में तो ग्रामोफोन भी किसी किसी घर में ही मिलता था। इन तहसीलदार साहिब के पास एक आकर्षक ग्रामोफोन था जिसे प्रायः उनकी युवा पुत्री सुरजीत कौर बजाया करती थी। सुरजीत एक बहुत ही प्यारी १५

वर्षीय लड़की थी। सम्भवतः वह हमें इसलिए बहुत प्यारी लगती थी कि वह रङ्ग बिरंगी मन मोहक साढ़ियां पहना करती थी या सम्भव है इसलिए कि उसके मुख पर सदा एक मोहिनी मुस्कान रहती थी। वह बहुत शीघ्र मां जी (सुरेन्द्र की मां) से घुल मिल गई। फिर तो वह प्रायः हमारे ही ड्राइङ्ग रूम में ग्रामोफोन उठा लाया करती और कितनी देर तक बजाती रहती। उस समय हम सब उसके आस पास एकत्र हो जाया करते। और वह अत्यन्त प्रेम से हमें अपने पास कौच पर बिठा लिया करती थी। मेरा तात्पर्य यह है कि सुरेन्द्र को अपने पास कौच पर बिठा लिया करती थी और मुझे सुरेन्द्र के पास बैठना पड़ता था। उन दिनों यह रेकार्ड नया २ चला था और बहुत प्रसिद्ध हुआ था :—

"छोटी बड़ी सूईयां री जाली का मोरा काढ़ना"

एक दिन जब हम स्कूल से लौटे तो हमारे ड्राइंग रूम में ग्रामोफोन बज रहा था। हम अपने पढ़ने के कमरे में जाने की बजाय सीधे ड्राइङ्ग रूम में चले गए और सुरेन्द्र ने सुरजीत के पास जाकर कहा—

"वह रेकार्ड बजाओ, न जीत जी!"

"कौन सा?"

"वह—छोटी बड़ी शुईयां............"

सुरेन्द्र की आयु उस समय दस और ग्यारह वर्ष के बीच थी परन्तु वह अभी तक प्रायः 'स' को 'श' ही कहता था। यह बात नहीं कि वह 'स' कह ही नहीं सकता था। उसका जी चाहे तो वह स्पष्ट 'स' कह सकता था। परन्तु आरम्भ से ही लाडला होने के कारण मां को उसकी तोतली बातें बहुत पसंद थीं। इसलिए वह जान बूझ कर 'स' को 'श' ही कहा करता था और अब तो यह उसका एक प्रकार से स्वभाव ही हो गया था।

आप इसे जिह्वा का दोष मान लीजिए परन्तु मैं तो इसे गुण ही कहूंगा क्योंकि उसकी भाषा में यदि यह गुण न होता तो सम्भवतः मैं यह घटना यहां व्यक्त करना आवश्यक न समझता। हां तो जब उसने कहा—

"छोटी बड़ी शुईयां" तो सुरजीत ने उसका मुख ऊपर उठाया और यह प्रकट करते हुए कि उसने सुना ही नहीं, फिर पूछा।

"कौन सा?"

सुरेन्द्र ने फिर उसी ढङ्ग से उत्तर दिया,

"छोटी बड़ी शुइयां री"

सुरजीत को इसके 'स' को 'श' कहने का ढङ्ग कुछ ऐसा पसन्द आया कि उसने झुककर प्यार से सुरेन्द्र का मुख चूम लिया। उस समय सुरेन्द्र की मां भी कमरे में खड़ी थी। उसने सुरजीत को बताया कि सुरेन्द्र आरम्भ से ही लाडला रहा है और अभी तक 'स' को 'श' ही कहता है। सुरजीत ने रेकार्ड बदलने से पूर्व एक बार फिर सुरेन्द्र को सम्बोधित करते हुए कहा,

"कहो सुइयां"

और जब सुरेन्द्र ने सुइयां को फिर शुइयां कहा तो वह इतनी हर्षित हुई कि खिलखिला कर हंस दी।

कुछ दिन बीत गए। अब सुरजीत ऐसे करती थी कि वह उस समय तक छोटी बड़ी सुइयां का रेकार्ड न लगाती जब तक सुरेन्द्र उसे बजाने को न कहता और फिर भी तब जब सुरेन्द्र २, ३ बार सुइयां को शुइयां कह लेता। सुरेन्द्र के शुइयां कहने पर वह हर बार खिलखिला कर हंसती। न जाने उसे इस बात में कौनसा हंसी का कोष मिल गया था कि वह हंसते हंसते दोहरी हो जाती थी।

सुरेन्द्र को टमाटरों से बड़ा प्रेम था। उसने कुछ ही दिनों में अपने बाग़ के सब टमाटर चटम कर दिए। अब पिछले कई दिनों से सरदार साहिब के टमाटरों पर दृष्टि रखता था। जब भी वह इन टमाटरों के पौधों के पास से गुजरता उनकी पीला पन लिए हुए लालिमा उसे निमन्त्रित करती हुई प्रतीत होती। और उसके मुंह में पानी भर आता। परन्तु यह सम्भवतः सरदार साहिब के भूत पूर्व तहसीलदार होने का भय था जो अब तक उसे टमाटर तोड़ने से रोक रहा था क्योंकि जहां तक मैं जानता हूं, इन मामलों में उसकी शरारतें सदा लोकोक्तियां बनी रही हैं। मैं भी विस्मय से सोचता था कि देखें यह टमाटर कब तक अपनी खैर मनाते हैं। एक दिन एक विचित्र घटना घटी। वह टमाटरों की धुन में धीरे धीरे पग रखता हुआ सरदार साहिब के बाग़ की ओर बढ़ रहा था कि उसे सुरजीत के कमरे से ग्रामोफोन की ध्वनि सुनाई दी। उस पर रेकार्ड भी उसका मन भाता बज रहा था। "छोटी बड़ी सुइयां री" वह टमाटर चुराना तो भूल गया और दबे पांव चलता हुआ सुरजीत के कमरे के समीप पहुंच गया। इसमें संदेह नहीं कि सुरजीत अब हम सब से भली भांति घुल मिल गई थी तो भी उनके बङ्गले में घुसनेका अवसर हमें बहुत कम मिला था। इसलिए सुरेन्द्र में अब भी भीतर जाते हुए एक स्वाभाविक झिझक थी और वह बजाए इसके कि कमरे में प्रविष्ट होते ही सुरजीत के पास जा खड़ा होता, इसके साथ लगकर खड़ा हो गया। एकाएक सुरजीत की दृष्टि उस पर पड़ी। उसके साथ ही एक शरारत पूर्ण मुस्कान उसके मुख पर खिल गई। उसने खट से ग्रामोफोन बन्द कर दिया और सुरेन्द्र को अपने पास बुलाते हुए कहा,

"अरे सुरेन्द्र! वहां क्यों खड़े हो। अन्दर आ जाओ।"

और सुरेन्द्र धीरे २ गर्दन लटकाए सुरजीत के पास पहुंच गया
"वहां क्यों खड़े हो गए थे ?" सुरजीत ने सुरेन्द्र की ठोढी उठा कर उसकी आंखों से आंखें मिलाते हुए कहा,

"यूंही—"उसने सिर झुकाते हुए उत्तर दिया।

"अच्छा, बैठ जाओ" सुरजीत ने उसे कौच पर बिठाते हुए कहा।

"बाजा सुनोगे ?"

"जी !"

"कौन सा रेकार्ड बजाऊं ?"

"वही !"

"वही कौनसा ?"

"वही जो है।"

"वही" सुरजीत ने मुस्कराते हुए कहा "उसका कोई नाम नहीं ?"

"मैं नहीं बताऊंगा" सुरेन्द्र ने लजाते हुए कहा।

"तो मैं नहीं बजाऊंगी" और ने मुस्कुराकर सुरजीत उसके पास कौच पर बैठ गई।

"तो मैं जाऊं ?" सुरेन्द्र दुखित स्वर में कहा।

"ऊंहूं !" सुरजीत ने विरोध में सिर हिलाया। फिर उठ कर अलमारी से एक प्लेट निकाली और उसमें कुछ अंगूर, आडू और सेब रखकर सुरेन्द्र के पास ले आई।

"लो खाओ"

"आप रेकार्ड तो बजातीं नहीं।"

"पहले यह खालो।"

"फिर बजाओगी ?"

"हां, हां अवश्य !"

सुरेन्द्र प्लेट से अंगूर उठा २ कर खाने लगा और सुरजीत

आलू छील २ कर उसे देने लगी। आलू छिल चुके तो सुरजीत छुरी लेकर सेब छीलने लगी। सुरेन्द्र ने सुरजीत का हाथ रोकते हुए कहा।

"शेब मैं नहीं खाऊंगा।"

"क्या नहीं खाएगा ?"

"शेब"

और सुरजीत पर हंसी का दौरा पड़ गया। उसने दोनों हाथों से सुरेन्द्र के मुख को ऊपर उठाते हुए कहा,

"कहो, सेब।"

और सुरेन्द्र ने भी सुरजीत को इस प्रकार खिलते देखा तो हंसते हुए कहा।

"शेब"

और सुरजीत ने जल्दी से सेब की एक कटी हुई फांक सुरेन्द्र के मुंह में डाल दी। और फिर जी खोलकर हंसने लगी। सुरेन्द्र ने भी इसकी हंसी का लाभ उठाते हुए भरे मुंह से कहा,

"अब वह रेकार्ड बजाओ, न।"

और सुरजीत ने अधिक हठ न करते हुए हंसते २ ग्रामोफोन पर वह रेकार्ड लगा दिया। फिर उसी प्रकार हंसती हुई सुरेन्द्र के पास आकर बैठ गई और शेष सेब छील कर देने लगी सुरेन्द्र ने मुस्कुराते हुए कहा, "अब बश।"

"बस"

"हां बश"

और सुरजीत और भी खिल कर हंस उठी। एकाएक एक रहस्य पूर्ण मुस्कान उसके मुख पर खिल उठी और उसने सुरेन्द्र की आंखों में आंखें डालते हुए प्यार भरे स्वर में कहा,

"कहो सुरजीत"

"शुरजीत"

"कहो सिंह"

"शिंह"

'सोना"

"शोना"

"सुरजीत सिंह सोना"

"शुरजीत शिंह शोना"

और इससे पूर्व कि सुरेन्द्र इसका अर्थ समझता और अर्थ समझकर भी सम्भवतः वह कुछ न समझता, सुरजीत ने खिलखिलाते हुए उसे खेंच कर अपने सीने से चिपटा लिया और उसके अधरों और गालों पर अगणित चुम्बन दे डाले। उसे जोर से अपने सीने से भेंच लिया और हंसते २ निढाल होकर कौच पर लेट गई।

फिर जिस तीव्रता से यह मद उठा था, उसी तीव्रता से गायब हो गया। और उसने सुरेन्द्र को अलग बिठाते हुए जल्दी से उठकर रेकार्ड बदल दिया। साढ़ी को ठीक किया और पुनः सुरेन्द्र के पास आकर बैठ गई।

"और कुछ खाओगे ?"

"ना, बश"

"बश" सुरजीत ने मुंह बनाते हुए कहा।

"जी ! अब मुझे घर जाना है।"

"अभी बैठो न।" सुरजीत ने सुरेन्द्र के समीप सरकते हुए कहा।

"न, मुझे अभी स्कूल का काम करना है।"

"श्कूल का।" सुरजीत ने मुस्कराते हुए कहा।

"जी"

"कल आओगे ?"

एकाएक सुरेन्द्र को अपने यहां आने का उद्देश्य

स्मरण हो आया। उसने सुरजीत के मुख पर दृष्टि पात करते हुए कहा।

"आप मुझे अपने बगीचे में से टमाटर लेने देंगी ?"

"क्यों नहीं ?"

"तो मैं कल आऊंगा।"

"टमाटर लेने ?"

"नहीं, टमाटर तो मैं अब लेता जाऊंगा।"

"तुम्हें टमाटर अच्छे लगते हैं ?"

"जी"

"और मैं ?"

"आप तो बहुत ही अच्छी हैं।

"सच ?"

"शच !"

और एक बार फिर सुरजीत ने उतावली से सुरेन्द्र का चुम्बन लिया। फिर खिलखिला कर हंसते हुए उसने सुरेन्द्र से कहा,

"अच्छा जाओ। जितने जी चाहे टमाटर तोड़ लो। परन्तु याद रखना, कल यहां अवश्य आना।"

× × × × ×

सुरेन्द्र जब मेरे कमरे में आया तो हंसी से फटा जा रहा था। उसके गाल टमाटर की भांति लाल थे। मैं ने उसके इस असीम हर्ष का कारण पूछा तो उस ने मुस्कराते हुए कहा,

"अंगूर खाए हैं, आड़ू खाए हैं और सेब भी।"

"अच्छा !"

"हां, हां ! उसने नयन मटकाते हुए कहा।

"पिता जी लाए हैं ?"

"ऊं हूं !" उसने उसी ढंग से उत्तर दिया।

"फिर ?"

"सुरजीत ने खिलाए हैं।" उसने मुंह मेरे कान के पास लाते हुए कहा। मैंने विस्मय से उसकी ओर देखा। अकस्मात मेरी दृष्टि उसकी जेबों पर पड़ी जो बुरी तरह से फूल रही थी।

"अरे !" मैं ने आश्चर्य चकित होते हुए पूछा, "यह इतने टमाटर कहां से तोड़ लाए ?"

"उन के बाग से।"

"तो फिर एक दिन मार भी खाओगे।"

"ऊं हुं ! मार नहीं खाऊंगा।" उसने हंसते हुए कहा" जीत जी कहती हैं जितने जी चाहे टमाटर तोड़ लो—।"

फिर उसने मेरे समीप आकर धीरे २ दबे स्वर में समस्त घटना ठीक २ सुना दी। मैं अभी इन बातों पर विचार ही कर रहा था कि वह खिलखिलाता हुआ कमरे से बाहिर चला गया।

उसके जाने के पश्चात् काफी समय तक मैं यह समझने का प्रयत्न करता रहा कि यह नव यौवना कवांरी लड़कियां अपनी वासना की तृप्ति के लिए लड़कों को क्यों प्रयुक्त करती हैं। और अब देखिये कब तक सुरेन्द्र के गाल प्रति दिन टमाटर बनते हैं। परन्तु बहुत सोचने के पश्चात् भी जब इन बातों का कोई सन्तोष जनक उत्तर न मिला तो मैं पुनः कापी पर भिस्तर परकार से ज्योमैट्री की शक्लें बनाने में लग गया।

दूसरा परिच्छेद

हमारे बंगले के ठीक सामने सड़क के दूसरी ओर एक और बंगला था जिस में कोई श्री के० एल० आहलूवालिया रहा करते थे। वह क्या करते थे? यह न तो हमें उस समय ज्ञान था और न अब। हां, हमें यह पता था कि वह कभी २ अपने बंगले के मैदान में बैड मिण्टन खेला करते थे। और इस खेल में उनके साथ प्रायः तीन स्त्रियाँ हुआ करती थीं। एक तो श्रीमती के० एल० आहलूवालिया, दूसरी श्री आहलूवालिया की बहिन जो सम्भवतः विधवा थी। यह मैं इस लिए कह रहा हूं कि उनकी आयु देखकर उन्हें कंवारी नहीं कहा जा सकता था, और उनके सुहागवती होने में इसलिए संदेह था कि न तो वह माथे पर बिंदी लगाती थी और न ही मांग में सिन्दूर छोड़ती थी। फिर जितना समय हम वहां रहे, हमने उन्हें कभी एक दिन के लिए भी कहीं जाते नहीं देखा। सम्भव है वह सुसराल से लड़कर मायके आ गई हो। परन्तु उन जैसी सुशील स्त्री का लड़ना भी तो माना नहीं जा सकता। तीसरी थी कोई श्रीमती विजय खोसला जो श्री आहलू-वालिया की इकलौती लड़की कुमारी उर्मिला आहलूवालिया की अध्यापिका थी और वहीं उनके पास बंगला में रहती थी।

कुमारी उर्मिला एक भोली भाली, सुन्दर और मधुर भाषिणी लड़की थी जो स्वच्छंदता से एक तितली की भांति बाग की एक पटड़ी से दूसरी पटड़ी पर फिरती रहा करती थी। उस समय उसकी आयु लगभग १०, ११ वर्ष थी।

हमारे लिए उस बंगले का सबसे बड़ा आकर्षण उसके

अगूंर और लोकाट थे जिन के बड़े २ गुच्छे बाग की दीवार से झांकते दिखाई देते थे और सुरेन्द्र को पहले ही दिन से आमन्त्रित कर रहे थे। परन्तु इनकी प्राप्ति में सब से बड़ी रुकावट श्री आहलवालिया का माली था जो बड़ी चौकसी से उनकी रक्षा करता था और किसी अन्य को बाग के पास फटकने भी न देता था। सोच २ कर हमने यह निश्चय किया कि पहले इस बंगले में आना जाना प्रारम्भ किया जाय। फिर अवसर पाकर अंगूर और लोकाटों पर हाथ साफ किया जाय।

सुरेन्द्र बचपन से ही उन सभी खेलों में रुचि रखता था जो केवल लड़कियों के लिए होते हैं। वह उनमें ऐसा सिद्धहस्त था कि लडकियां भी क्या होंगी।

एक दिन प्रातःकाल सुरेन्द्र अपने बंगले के फाटक के पास खड़ा अगूर के गुच्छों की ओर लालसा पूर्ण दृष्टि से देख रहा था कि कुमारी उर्मिला रस्सी टापती हुई बंगले के फाटक के समीप आई। मैं उसे 'रस्सी टापना' ही कहूंगा क्योंकि विशिष्ट स्त्री परिभाषा में इसे 'रस्सी टापना' ही कहा गया है। अतः मुझे भय है कि इसके स्थान पर फांदना या कूदना शब्द का प्रयोग किया तो बहुत कम लोग मेरा आशय जान सकेंगे। खैर, तो यह एक अत्यन्त लोक प्रिय खेल है। शायद ही कोई ऐसी पंजाबी लड़की होगी जिसने किसी न किसी समय रस्सी न टापी होगी। इस खेल में रस्सी टापने वाली लड़की लगभग ३ गज़ लम्बी रस्सी (लम्बाई शरीर की लम्बाई के अनुसार कम या अधिक हो सकती है) के दोनों सिरे हाथों में लेकर रस्सी को घेरे में अपने शरीर के चारों ओर घुमाती है। जब भी यह रस्सी पांव के समीप पहुंचती है तो स्वयं चपलता से फांद जाती है। बस, इस निरन्तर कूदा फांदी का नाम है 'रस्सी टापना।'

सुरेन्द्र ने जब उर्मिला को रस्सी टापते देखा तो इसकी बुद्धि ने तुरन्त बङ्गले में जाने का उपाय सोच लिया। वह दौड़ा हुआ अपने कमरे में गया और अपनी रङ्गदार डोरी की रस्सी जिसके दोनों सिरों पर लकड़ी के दो दस्ते लगे हुए थे, उठा लाया और बङ्गले के फाटक के पास खड़ा होकर टापने लगा सुरेन्द्र को रस्सी टापने के बहुत से ऐसे ढंग आते थे जो बहुत कम लड़कियों को पता होते हैं। उसने पहले तो सीधी रस्सी टापी। फिर उल्टी। फिर उल्टी रस्सी टापते हुए फूल डालने शुरू किए। फिर सीधी रस्सी में कैंची लगाई और अंततः चर्खा कातने की भांति टापने लगा। बस इतना पर्याप्त था। उर्मिला कुछ समय तक तो एकटक उसकी ओर देखती रही। फिर बिना किसी भूमिका के उसके पास चली आई और सुरेन्द्र को सम्बोधित करके कहने लगी,

"मुझे भी फूल डालना सिखा दो।"

"तुम नहीं सीख सकोगी।"

"तुम सिखाओ तो सही। देख लेना मैं सीख लूंगी।"

"यहां नहीं। यहां माता जी रस्सी से खेलता देख लेंगी तो नाराज होंगी।"

"तो फिर आओ हमारे बङ्गले में।"

"अच्छा, चलो।"

और सुरेन्द्र आनन्द मुग्ध उर्मिला के साथ हो लिया।

"तुम्हारा नाम क्या है?" चलते २ सुरेन्द्र ने पूछा।

"उर्मिला। और तुम्हारा?"

"सुरेन्द्र"

"हूं"

बाग़ में पहुंचते ही सुरेन्द्र ने एक विजयी दृष्टि अंगूर

के गुच्छों पर डाली। मानो कह रहा है कि आज नहीं तो कल तुम मेरे मुंह में होगे। उर्मिला ने रुकते हुए कहा,

"यहां सिखाओगे ?"

और सुरेन्द्र ने बे परवाई से उत्तर दिया, "यहीं सीख लो।"

"तो सिखाओ।"

"अच्छा देखो। पहले मैं रस्सी टापता हूं। मेरी ओर ध्यान से देखते रहना।"

"अच्छा।"

"यह देखो। पहले इस प्रकार उल्टी रस्सी घुमाई जाती है। फिर इस प्रकार हाथों को कैंची के रूप में ले जाकर इस प्रकार फूल डाला जाता है। समझी ?"

"जी"

"तो फिर डालो फूल। परन्तु याद रखना, रस्सी के पांव के नीचे से निकलते ही हाथों को कैंची के रूप में ले जाना अन्यथा रस्सी उलझ जाएगी।"

परन्तु यत्न और सावधानी के बावजूद रस्सी उर्मिला की टांगों में उलझ गई और वह गिरते २ बची।

"बस, डाल लिया फूल" सुरेन्द्र ने कटाक्ष पूर्वक कहा,

"मैंने न कहा था कि तुम से फूल नहीं डाला जाएगा।"

"डाल लूंगी। डाल लूंगी।" उर्मिला ने साहस से कहा, "यह, तो पहली बार थी ना, तुम एक बार फिर फूल डालकर बताओ। "अच्छा देखो" सुरेन्द्र ने पुनः चपलता से फूल डालने शुरू किए।

"उर्मिला—"किसी ने पास ही से आवाज दी। सुरेन्द्र के फुर्ती से चलते हुए हाथ वहीं के वहीं रुक गए। उसने मुड़ कर उस ओर देखा तो एक स्त्री को पास ही एक पटड़ी पर खड़े पाया

इतने में ऊर्मिला दौड़ कर नवागन्तुका के पास पहुंच गई और उसका हाथ पकड़ कर कहने लगी।

"ममी, देखो न सुरेन्द्र कैसी अच्छी रस्सी टापता है।" सुरेन्द्र भी धीरे २ चलता हुआ श्रीमति आहलूवालिया के समीप पहुंच गया और हाथ जोड़कर कहने लगा, "नमस्ते, चाची जी।"

"जीते रहो, बेटा" श्रीमती आहलूवालिया ने प्यार से सुरेन्द्र के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा, "तुम क्या यहीं कहीं रहते हो?"

"जी, सामने वाले बङ्गले में।" सुरेन्द्र ने सिर झुकाए हुए उत्तर दिया।

"अच्छा, तो तहसीलदार साहिब के खाली भाग में तुम आये हो?"

"जी, बस वहीं।"

"तुम्हें रस्सी टापनी तो खूब आती है।"

"जी बस जरा आती ही है।"

"हमें भी टाप कर दिखाओ।"

"जी कुछ इतना अच्छा तो नहीं आता। आपको सम्भवतः अच्छा न लगे।"

"ममी!" ऊर्मिला ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "सुरेन्द्र बहुत अच्छी रस्सी टापता है।"

"जरा हमें भी दिखाओ न"

"आपकी यही इच्छा है तो देख लीजिए" और सुरेन्द्र ने कुछ पग पीछे हट कर रस्सी टापना शुरू कर दिया। पहले धीरे धीरे, फिर तेज, फिर बहुत तेज, फिर एक पांव पर, फिर दोनों पांवों पर, फिर साईकल, फिर कैंची, फिर चर्खा, फिर फूल और एक सिद्ध हस्त मदारी की भांति कुछ ही क्षणों में उसने अपने

सभी करतब दिखा दिए और फिर हांपता हुआ श्रीमती आहलूवालिया के समीप आ गया।

"बहुत अच्छा" श्रीमती आहलूवालिया ने प्रेम से सुरेन्द्र की पीठ पर थपकी देते हुए कहा, "तुम तो बहुत चतुर दिखाई देते हो?"

"आपकी कृपा है।" सुरेन्द्र ने आंखें नीची किए हुए कहा, श्रीमती आहलूवालिया सुरेन्द्र की बातों से बहुत प्रभावित हुईं और उन्होंने उसके माथे पर प्यार से चुम्बन देते हुए कहा,

"आओ बेटा! पहले चाय पी लो, फिर रस्सी टापना।"

"जी, अब मैं घर जाऊंगा।" सुरेन्द्र ने झिझकते हुए कहा।

"क्यों?"

"चाय के समय घर पर न हुआ तो माता जी समझेंगी कि आवारा घूम रहा हूं।"

"तुम्हें माता जी से बहुत डर लगता है?"

"जी, डर तो लगना ही चाहिये। वैसे उन्होंने मुझे आज तक घुरकी भी नहीं दी।"

"ऐसे अच्छे बेटे को कौन घुरकी देगा?" श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र की ठोड़ी उठा कर प्यार भरी दृष्टि उसके मुख पर डालते हुए कहा, "आओ मेरे साथ।" परन्तु सुरेन्द्र को फिर भी हिचकिचाता देखकर श्रीमती आहलूवालिया ने पुकारा।

"माली—ओ माली।"

"जी—बीबी जी।"

"सामने बङ्गले में कह आओ, सुरेन्द्र आज यहां चाय पियेगा।"

"बहुत अच्छा, बीबी जी!"

और माली प्रणाम करके चला गया।

श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र की ओर देखते हुये कहा, "अब आओ चलें।"

और सुरेन्द्र धीरे २ सिर झुकाये साथ हो लिया।

श्रीमती आहलूवालिया को सुरेन्द्र की बातों से कुछ एसा प्रेम हुआ कि आज घरके अन्य लोगों के साथ चाय पीने की बजाये उन्हों ने अपने, उर्मिला और सुरेन्द्र के लिये अपने कमरे में पृथक चाय मंगवाई। प्यालियों में चाय डालते हुये श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र से पूछा,

"चीनी कितनी डालूं ?"

"जी, दो चमचे"

"केवल दो चमचे ? हमारी उर्मिला तो चार चमचे डालती है।"

"जी, माता जी कहती हैं अधिक चीनी पीना अच्छा नहीं होता।"

"अच्छा आज तीन चमचे पी लो। माता जी कुछ नहीं कहेंगी।" और मुस्कराते हुए श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र की प्याली में तीन चमचे चीनी मिला दी।

चाय पी चुकने के पश्चात श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र से पूछा,

"फल खाओगे ?"

"जी अब नहीं।"

"तुम्हें फल अच्छे नहीं लगते ?"

"जी फल तो मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। परन्तु माता जी कहती हैं चाय पीने के पश्चात् फल खाना स्वास्थ्य के लिये अच्छा नहीं होता।"

"सब बातें तुम्हारी माता जी ही कहती हैं।" श्रीमती आहलूवालिया ने हंसते हुये कहा, "और तुम कुछ भी नहीं कहते।"

"जी मैं भी कहता हूं।"

"क्या?"

"जो कुछ माता जी कहती हैं।"

और श्रीमती आहलूवालिया इस ग्यारह वर्षीय बालक की सरलता और श्रद्धा से इतनी प्रभावित हुईं कि उन्हें चाय में दो की बजाय तीन चमचे चीनी डालने में दुख सा होने लगा। उन्होंने सुरेन्द्र की श्रद्धा को आघात न पहुंचाना चाहा और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरते हुए कहा।

"अच्छा खाओ मत, साथ लेते जाओ।" और सुरेन्द्र के इन्कार करते २ श्रीमती आहलूवालिया ने उसके रूमाल में अंगूरों के दो बड़े गुच्छे बांध दिये।

सुरेन्द्र जब वापिस अपने बङ्गले को लौटने लगा तो श्रीमती आहलूवालिया ने प्यार से कहा,

"यहां आते रहा करो, बेटा! यह भी तुम्हारा अपना ही घर है।"

सुरेन्द्र के लिए यह निमन्त्रण निरर्थक था क्योंकि उसने मन ही मन निश्चय कर लिया था कि वह प्रायः यहां आया करेगा। तो भी उसने नम्रता से कहा।

"जी बस आया ही करूंगा।"

उर्मिला बाग़ के फाटक तक सुरेन्द्र के साथ आई जहां दोनों ने मुस्कराती हुई आंखों से एक दूसरे की ओर देखा। इन चंचल मुस्कराती हुई आंखों ने शब्दोच्चारण के बिना ही निश्चय कर लिया कि वह आज से एक दूसरे के साथी हैं।

:२:

कुछ ही दिनों में सुरेन्द्र और उर्मिला में गाढ़ी मैत्री हो गई। उर्मिला निश्चिंत सुरेन्द्र के कमरे में घुस आती और उसकी वस्तुओं को उल्ट पुल्ट करके रख देती। यहां तक कि उस की निजी अलमारी को जिसे मुझे भी हाथ लगाने की आज्ञा न थी, वह इस ढंग से खोलती मानो वह किसी पुरानी पुस्तक के पृष्ठ पलट रही है। फिर जो वस्तु उसे भली लगती, सुरेन्द्र से बिना पूछे उठाकर अपने पास रख लेती और सुरेन्द्र चूं तक न करता। इसका सब से बड़ा कारण सम्भवतः यह था कि सुरेन्द्र स्वयं भी कोई कसर उठा न रखता था और उर्मिला की प्रत्येक वस्तु को अपनी सम्पत्ति समझता था। इन दिनों में श्रीमती आहलूवालिया की कृपा दृष्टि भी उस पर अधिक से अधिक होती गई। इसलिए जिस उद्देश्य से सुरेन्द्र ने इस बङ्गले में आना जाना शुरू किया था, वह समाप्त हो गया। इन्हीं दिनों एक दिन श्रीमती आहलूवालिया ने फलों का एक टोकरा सुरेन्द्र के घर भी भिजवा दिया जिनके उत्तर में एक पेटी नमकीन पिस्ते की पहुंच गई। बस, फिर क्या था लेन देन का सिल-सिला शुरू हुआ और सम्बन्ध बढ़ते गए। सुरेन्द्र की यह दशा थी कि इधर स्कूल से आया, बस्ता अपने कमरे में रखा, जल्दी से कुछ अल्पाहार किया और खट से श्रीमती आहलूवालिया के बङ्गले में। कभी २ उर्मिला इससे बढ़ जाती और अभी सुरेन्द्र अल्पाहार कर ही रहा होता कि वह उसके सिर पर आ धम-कती। फिर रस्सी टापना, गेंद खेलना, तोतकड़ा डालना, पांच गीटी खेलना, अर्थात् स्त्रियों के सभी खेल खेले जाते।

परन्तु स्त्रियां तो श्रीमती आहलूवालिया के बङ्गले में बैड मिण्टन खेला करती थीं जिसे कम से कम हिंदुस्तान में

तो केवल दशमांश ही स्त्रियों का खेल कहा जा सकता है। सुरेन्द्र को भी स्त्रियों का यह लचक २ कर रैकट से चिड़ी उछालना बहुत भला लगा। और वह देर तक नैट के समीप खड़ा होकर उनकी इस दौड़ धूप से आनंदित होता।

एक दिन श्री आहलूवालिया कहीं गए हुए थे और उन खिलाड़ी स्त्रियों को चौथा साथी नहीं मिल रहा था। श्रीमती आहलूवालिया ने जो पास ही सुरेन्द्र को चहकते देखा तो उसे खेलने के लिए आमन्त्रित कर लिया। सुरेन्द्र को विधाता दे ऐसे अवसर। उसने तुरन्त आमन्त्रण स्वीकार किया और झट से रैकट लेकर मैदान में पहुंच गया। एक दो बार तो उसने विचित्र हरकतें की परन्तु शीघ्र ही संभल गया। और कुछ दिनों में तो शाट पर शाट लगाने लगा।

सुरजीत ने जब देखा कि सुरेन्द्र के समय का अधिक भाग खेल कूद और उर्मिला पर लग रहा है तो उसने उसका ध्यान अपनी ओर आकृष्ट करने के लिए प्रति दिन नए रिकार्ड खरीदने शुरू कर दिए। अब पुनः सुरेन्द्र सुरजीत की ओर आकृष्ट होने लगा। फिर एक विचित्र घटना हुई।

उस दिन सम्भवतः रविवार था। सुरेन्द्र स्नान के पश्चात् धोती बांधे बरामदे में एक ओर कुर्सी पर बैठा धूप सेंक रहा था कि दूसरी ओर से सुरजीत आई। सुरेन्द्र का धोती बांधने का ढंग सर्वथा स्त्रियों का सा था। वह सदा धोती का एक आंचल साढ़ी की भांति अपने कन्धों पर डाल लेता था और कभी २ तो आंचल सिर पर भी ओढ़ लेता था। आज भी वह इसी वेश में सूर्य की ओर मुख किए बैठा था और उसके बैठने का ढंग भी कुछ ऐसा ही था। सुरजीत ने पीठ की ओर से देखते हुए समझा कि आज कोई लड़की घर में अतिथि है। सुरेन्द्र की

मां बरामदे में एक ओर बैठी सिलाईयों से स्वेटर बुन रही थी। सुरजीत ने सुरेन्द्र की मां के पास बैठते हुए कहा,

"मां जी, यह लड़की कौन आई है ?"

"कौन ?" सुरेन्द्र की मां ने दृष्टि ऊपर उठाते हुए कहा और फिर सुरेन्द्र को कुर्सी पर बैठा देखकर हंसते हुए कहने लगी,

"अब जाकर स्वयं ही देख लो ना।"

और सुरजीत बिना किसी झिझक के कुर्सी की ओर चल दी। सुरेन्द्र जो आनंद से बैठा उनकी बातें सुन रहा था, तब तक चुपके से बैठा रहा जब तक कि सुरजीत उसके बिल्कुल समीप न पहुंच गई। फिर एकाएक पलटा और जोर से चिल्लाया,

"हौ, वौ वौ !"

एक क्षण के लिए सुरजीत कुछ बौखला सी गई लेकिन सुरेन्द्र को देखते ही सहसा उसकी हंसी उमड़ आई। उसने खिल-खिलाते हुए सुरेन्द्र को बाहु से पकड़ा और उसकी मां के पास ले आई जो स्वैटर को एक ओर रखे हंसते २ लोट पोट हुई जाती थी। सुरजीत ने हंसते२ सुरेन्द्र की मां से कहा,

"माता जी ! मैं जरा इस लड़की की कंघी पट्टी कर दूं। बेचारी के बाल कैसे बिखर रहे हैं।"

और फिर किसी उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना सुरेन्द्र को साथ लेकर अपने कमरे की ओर चल दी। सुरेन्द्र भी खिल-खिलाता हुआ साथ हो लिया। अपने कमरे में पहुंच कर सुरजीत ने सुरेन्द्र को कौच पर आराम से बैठ जाने को कहा। फिर एक चतुर नायन की भांति उसके लम्बे २ बालों की काकिलें गूंथने लगी। पिछले कुछ दिनों में सुरजीत ने सुरेन्द्र को अगूंर और आड़ू खिलाकर इतना राम कर लिया था कि अब इसमें सुरजीत की बात टालने का साहस न था। फिर उसे स्वयं भी तो इस

हंसी में आनन्द आ रहा था। उसने चुपके से अपना सिर सुरजीत के सीने से लगा दिया और आंखें बंद करके निज को सुरजीत की इच्छा पर छोड़ दिया। सुरजीत ने पहले तो उसके बालों को संवारा, फिर आंखों में सुरमा डाला, माथे पर बिन्दी लगाई, होंठों को लाली लगाई, गालों पर पौडर लगाया और अंत में उसकी मांग में सिंदूर भी छोड़ दिया। सुरेन्द्र पर वैसे ही नारी सौंदर्य छाया हुआ था, सजावट ने रही सही कसर पूरी कर दी। लेकिन सुरजीत इससे भी संतुष्ट न हुई। अलमारी से हल्के सुरमई रंग की साड़ी और बलाऊज उठा लाई और सुरेन्द्र को बलाउज देकर कहने लगी।

"लो इसे पहनो।"

"ऊं हूं! मैं नहीं पहनूंगा।"

"क्यों ?"

"माता जी मारगी।"

"अरे पागल! नहीं मारेंगी। उलटा मिठाई खाने को देंगी।"

"और अगर मारा तो ?"

"मैं जिम्मेदार"

"और अगर मिठाई न दी ?"

"तो भी मैं जिम्मेदार"

"ऊं हूं! पीछे तुम फिर जाओ तो ?"

"अच्छा, यह बात है ?" सुरजीत ने मुस्कराते हुए कहा और प्लेट में कुछ मिठाई और नमकीन पिस्ता रखकर ले आई।

"लो पहले खालो। पीछे पहनना।"

"यह बात नहीं" सुरेन्द्र ने कलाकन्द का एक टुकड़ा मुंह में रखते हुए कहा, "मुझे लड़कियों जैसे कपड़े पहनते लज्जा आती है।"

"और यह जो प्रातः काल से लड़कियों की सी धोती पहन रखी है ?"

"इश का क्या है ?"

"तो फिर इश का क्या है ?" सुरजीत ने प्यार से मुहँ बनाते हुए कहा,

"न मुझे लज्जा आती है।"

"झूठा कहीं का।"

"तुम लड़कों के शे कपड़े पहनो तो तुम्हें शर्म न आएगी ?"

"ऊं, हूं !"

"तो फिर पहले तुम चाचा जी की पतलून पहन कर दिखाओ !"

सुरजीत एक क्षण के लिए हिचकिचाई। सहसा उसे एक और शरारत सूझी। उसने मुस्कुराते हुए कहा,

"अगर मैं पहन लूं तो।"

"तो फिर मैं भी पहन लूंगा।"

"हुआ वचन ?"

"जी"

सुरजीत लपक कर सरदार साहिब के कमरे से एक पूरा सूट उठा लाई। फिर बड़े शीशे के सामने खड़े होकर अपना भेस बदलना शुरू कर दिय। पहले कमीज बदली, फिर पतलून चढ़ाई जो बकलस खैंचने पर भी ढीली नजर आई। सुरजीत ने झट से एक रूमाल लेकर उसे तह किया और पेटी के स्थान पर बांध लिया। फिर टाई बांधी, कोट पहना बालों को पुरुषों की भान्ति बांधा और दस्तार बांध कर लड़का बन गई। सुरेन्द्र उसे देखता जाता था और खिलखिलाता जाता था। सुरजीत के कपड़े पहनते र सुरेन्द्र का मारे हंसी के बुरा हाल हो गया। फिर जब सुरजीत

कपड़े पहन कर इसकी ओर आकृष्ट हुई तो वह खिलखिलाता हुआ द्वार की ओर बढ़ा।

"कहाँ चले ?" सुरजीत ने टोकते हुए कहा।

"माता जी को कहता हूं सुरजीत लड़का बनी है। हा, हा, हा ! ही ही, ही !!"

"पहले साड़ी और बलाऊज तो पहनो"

"ऊं ,हूं, पहले माता जी को बता लूं।" यह कहते २ सुरेन्द्र पुनः द्वारकी ओर बढ़ा।

"देखो सुरेन्द्र ! तुम माता जी की ओर गए तो फिर मैं तुम से कभी न बोलूंगी।"

"तुम्हें तो मैं झट से मना लूंगा।" सुरेन्द्र ने चंचलता से आंखें मटकाते हुए कहा।

"नहीं, मैं कभी नहीं मानूंगी।" सुरजीत न रोष से मुंह दूसरी ओर फेरते हुये कहा, और हमारे पास एक ऐसी वस्तु है कि तुम देखो तो फड़क उठो।"

"क्या ?" सुरेन्द्र ने अतीव उत्सुकता प्रकट करते हुये कहा।

"तुम्हें नहीं दिखाऊंगी। तुम कोई मेरी बात मानते हो ?"

"मानूंगा पहले दिखाओ तो सही।"

सुरजीत उठी और अलमारी से एक सुन्दर डिब्बा उठा लाई। सुरेन्द्र देखते ही चिल्लाया, "ओ हो चाकलेट !"

"हूं," सुरजीत ने डिब्बा तिपाई पर रखते हुए कहा, "और देखो कितने बड़े हैं" और कहते २ सुरजीत ने एक चाकलेट का वर्क उतार कर सुरेन्द्र की ओर बढ़ा दिया।

"लो खा कर देखो।" सरेन्द्र ने बिना किसी हिचकिचाहट के चाकलेट मुहं में रख लिया। "क्यों कैसे हैं ?" सुरजीत ने मुस्कराते हुए पूछा।

"चाकलेट तो बहुत अच्छे हैं।"

"तुम साढ़ी व बलाऊज पहन लो; तो यह सारा डब्बा तुम्हारा।"

"शारा।"

"हां, शारर।'.

सुरेन्द्र ने अधिक इन्कार करना व्यर्थ समझा। कुछ ही क्षणों में सरजीत ने सुरेन्द्र को साढ़ी व बलाऊज पहना कर दुल्हन बना दिया और साढ़ी के पल्लू से थोड़ा सा घूंघट भी निकाल दिया। फिर स्थान २ पर सेफटी पिन लगा दिये ताकि चलने में साढ़ी का आँचल खिसक न जाय। इतना कर चुकने के पश्चात उसने एक समालोचनात्मक दृष्टि सुरेन्द्र पर डाली। उसे सुरेन्द्र इस वेश में इतना भला लगा कि उसने व्याकुल हो कर उसे गले से लगा लिया। फिर प्यार से कहने लगी,

"देखो सुरेन्द्र! तुम मेरे घर वाली और मैं तुम्हारे घर वाला।"

"ऊं हूं! तुम तो लड़की हो।"

"इस का क्या है? इस समय तो लड़का हूं। अब आओ चलें माता जी के पास।"

"तुम भी ऐसे ही चलोगी?"

"हूं"

और सुरेन्द्र पर एक बार फिर हंसी का दौरा पड़ा। उसने हंसते हुए कहा, "चलो।"

"देखो सुरेन्द्र! हंसो नहीं। इस प्रकार सब खेल बिगड़ जाएगा। बस चुपके से सिर झुकाए साथ हो लो। हां, बस, इस प्रकार।" फिर उसके कान में कुछ कहा जिसे समझकर सुरेन्द्र ने कहा, "हूं, यह बात है।" इतने में सुरजीत लपक कर अपने

पिता जी की छड़ी उठा लाई और उसे बगल में दाब कर सुरेन्द्र को साथ ले अकड़ २ कर चलती हुई सुरेन्द्र की माता जी के पास पहुंच गई। वह अभी स्वेटर बुनने में संलग्न थीं। सुरजीत ने खनकारते हुए कहा,

"देखो, माता जी! आपके लिए कैसी अच्छी बहू लाया हूं।" कहते २ सुरजीत एक कुर्सी खेंच कर उस पर बैठ गई और टांग पर टांग रख कर छड़ी से बूट की नोक पर ठोकरें मारने लगी।

"अरी सुरजीत, तुम!" सुरेन्द्र की मां ने चौंक कर कहा और यह मेरे लाल को क्या किया है?"

"अरी सुरजीत नहीं, श्री सुरजीत कहिए।" सुरजीत ने एक बार फिर खनकारते हुए कहा, "और यह आपका लाल नहीं आपकी बहू है। पांव छू री अपनी सास के।"

सुरेन्द्र सुरजीत के सिखाने के अनुसार आगे बढ़ा परन्तु इससे पूर्व कि वह अपनी माता जी के पांव छुए, उन्होंने बढ़कर उसे गले से लगा लिया और हंसते हुए कहने लगी,

"मेरे बेटे को तू नजर लगा देगी, सुरजीत!"

और सुरजीत के कुछ उत्तर देने से पूर्व सुरेन्द्र की मां ने जेब से एक रुपया निकाल कर सुरेन्द्र और सुरजीत का सिर वारना * किया। फिर दोनों के माथे पर प्रेम से चुम्बन दिया।

सुरजीत ने मुस्कराते हुए सुरेन्द्र की मां से कहा, "माता जी, बहू को मुंह दिखाई तो दी ही नहीं।"

"अच्छा, यह बात है।" सुरेन्द्र की मां ने उनकी हंसी में सम्मिलित होते हुए कहा। फिर एक पांच रुपये का नोट

---

* एक रस्म है जिस में किसी प्रिय जन को कुदृष्टि से बचाने के लिए उसके सिर से कुछ धन राशि घुमाकर निर्धनों को बांटी जाती है।

सुरेन्द्र की हथेली पर रखते हुए घूंघट उठा कर कहने लगी,

"मुखड़ा तो चांद सा है।

"बस, और कुछ खाने को न दोगी बहू को।" सुरजीत ने कुर्सी पर पहलू बदलते हुए कहा,

"वह भी लो" और सुरेन्द्र की मां एक प्लेट में कुछ मेवा, पिस्ता, बादामों की गिरियां, खाना और कुछ मिठाई रख कर ले आई।

"स्वयं कैसे खाएगी।" सुरजीत ने कहा, "नई नवेली दुल्हन है, अपने हाथ से खिलाओ।"

और सुरेन्द्र की मां ने हंसते २ सुरेन्द्र को मिठाई खिलानी शुरू की। इतने में एक ओर से उर्मिला रस्सी टापती हुई आ गई और सुरेन्द्र और सुरजीत को। इस रूप में देखकर रस्सी टापना भूल गई। वह हर्ष से उछलने और जोर २ से ताली बजाने और हंसने लगी।

"ओ, ओ, ओ! सुरेन्द्र लड़की बना है। आ, आ, आ, आ! सुरजीत लड़का बनी है। ही, ही, ही! हो, हो, हो!! हा, हा, हा, !!!" और वह जोर २ से ताली बजाने और कूदने लगी। कभी सुरेन्द्र के पास आती और नीचे झुक कर उस के मुंह को देखती। फिर खिलखिलाती हुई सुरजीत के पास चली जाती। उस की पतलून को हाथ लगाकर पीछे भाग आती और जोर से हंसती। इसकी इस निरन्तर खिलखिलाहट ने वह समां बांधा कि सुरजीत की मां यही देखन के लिए चली आई कि पड़ोस में कहीं किसी ने हंसाने वाली गैस तो नहीं छोड़ दी। बरामदे में पग रखना था कि वह भी मारे हंसी के लोट पोट होने लगी। सुरजीत अपनी मां को देखकर क्षण भर के लिए झिझकी परन्तु फिर पहले का सा रूप धरते हुए कहने-लगी।

"देखो मां जी ! आपके लिए कैसी दुल्हन लाया हूं।"

"हूं" सुरजीत की मां ने हंसते हुए कहा।

फिर सुरेन्द्र की मां के पास आकर कहने लगी; "बहिन ! तुम उठो। अब मैं बहू को खिलाती हूं।"

"मुंह दिखाई देनी पड़ेगी।" सुरजीत ने मुस्कराते हुए कहा।

"मुंह दिखाई पहले।" सुरजीत की मां ने हंसते हुए कहा। फिर सुरेन्द्र के हाथ में दो रुपये रख कर उसने घूंघट उठा कर देखा और मुस्करा कर कहा,

"बहू तो चांद सी है।" फिर स्वयं सुरेन्द्र को मिठाई खिलाने लगी। उर्मिला देखती जाती थी और हंस हंस कर कूदती हुई तालियां बजाती थी। एकाएक उसे कुछ विचार आया और वह रस्सी घुमाती हुई यह जा, वह जा, नजरों से ओझल हो गई।

कुछ क्षण पश्चात श्रीमति आहलूवालिया भी आ गईं। और उनके पीछे २ उनका नौकर दो प्लेटें उठाये हुए आ रहा था। एक में मिठाईयां थीं और दूसरी में अंगूर, आड़ू और लोकाट। साथ २ उर्मिला भी आ रही थी, नाचती, कूदती, तालियां बजाती।

श्रीमति आहलू वालिया ने सुरेन्द्र के समीप आते हुए कहा "हम भी बहू का मुंह देखेंगे।" और इससे पूर्व कि सुरजीत कुछ कहे उन्होंने सुरेन्द्र की हथेली पर एक रुपया रख दिया और घूंघट उठा कर कहने लगी,

"चांद सी बहू है।"

श्रीमती आहलूवालिया ने सुरजीत की मां का स्थान ले लिया और अपने साथ लाई प्लेटों मे से सुरेन्द्र को मिठाई और फल खिलाने लगी।

न जाने साथ के बंगलों में सूचना किसने दे दी कि आस पास से स्त्रियां सुरजीत और सुरेन्द्र को देखने धड़ा धड़ आने लगीं। फिर तो वह धमाचौकड़ी मची, वह शोर हुआ कि हंसी की नदियां बह गईं। सुरेन्द्र के समीप मिठाई और फलों के ढेर लग गए और बारह बजते २ उसने ग्यारह रुपये बटोर लिए। फिर यह बात जैसे फूट निकली थी, उसी प्रकार गायब भी हो गई या सम्भवतः खाने के समह ने स्त्रियों को इस ठट्ठे में अधिक भाग न लेने दिया। जब सब स्त्रियां धीरे २ चली गईं तो सुरजीत भी उठने लगी परन्तु सुरेन्द्र की मां ने दोनों को बिठा कर फिर सिर वारना किया। उन्हें हामल की धूनी दी। फिर बारा २ गले से लगा कर उनके माथे पर प्यार से चुम्बन दिए।

सुरेन्द्र भी सुरजीत के साथ २ उसके कमरे में गया। जहां साड़ी और बलाउज उतारने से पूर्व सुरजीत ने उसे जी भर कर प्यार किया। फिर मुंह हाथ धुलाया और चलते चलते चाकलेट का डिब्बा उसकी बगल में दे दिया।

× × × × × × ×

उस सायंकाल जब सुरेन्द्र श्री आहलूवालिया के बंगले में गया तो उर्मिला उसका हाथ थामे हुए उस बाग के एक घने कोने में ले गई जहां वृक्षों के बाहुल्य के कारण दिन को भी अन्धेरा छाया रहता था। फिर सुरेन्द्र की आंखों में आंखें डाल कर कहने लगी, ।

"आओ सुरेन्द्र! हम भी घर २ खेलें।"

"ना जी, अब मेरे से फिर लड़कियों के से कपड़े नहीं पहिने जाते।"

"नहीं, तुम घर वाले बनना। मैं घर वाली बनूंगी।"

"इसमें क्या आनन्द आएगा?"

"आनन्द होगा। तुम सुनो तो सही।"

'अच्छा बताओ।"

"यह हुआ हमारा घर।" और सुरेन्द्र ने देखा कि उर्मिला ने एक ओर कुछ ईंटों से एक छोटा सा कमरा बना रखा था।

"और यह बाग" उर्मिला ने वृद्धि की।

"हूं"

"अब मानो रात हो गई है। मैं अंगूर और लोकाट तोड़ कर लाती हूं। हम पहले रात का खाना खायेंगे।"

"अच्छा!" अब सुरेन्द्र ने भी उत्सुकता प्रकट की।

"फिर हम सो जाएंगे।"

"क्या यहीं?"

"हां, एक दूसरे के गले में बाहें डाल कर।"

"फिर?" सुरेन्द्र ने चकित होते हुए प्रश्न किया।

"फिर पहले जो उठे, वह दूसरे का मुंह चूमे।"

"पहली बार मैं उठूंगा।" सुरेन्द्र ने शर्त पेश की।

"अच्छा, तुम ही पहले उठना।"

फिर खेल खेलना शुरू हुआ। उर्मिला अंगूर और लोकाट तोड़ लाई जिन्हें खाने के पश्चात उर्मिला ने एक हल्की सी अंगड़ाई ली मानो नींद आ रही है। फिर दोनों एक दूसरे से लिपट कर वहीं घास पर लेट गए। कुछ क्षण पश्चात सुरेन्द्र उठा। उस ने उर्मिला का सिर अपनी गोदी में रख लिया और सुरजीत से लिया हुआ समस्त अनुभव यहाँ प्रयुक्त कर डाला।

आप सम्भव है इस खेल को बेहूदा समझें परन्तु मुझे वास्तविक घटनाएं व्यक्त करनी हैं और अपनी ओर से कुछ रंग मिलाने में असमर्थ हूं। परन्तु जहां तक आकर्षण का सम्बन्ध है, मैं इतना अवश्य कहूंगा कि खेल निरंतर कई वर्षों तक खेला जाता

रहा। एक बार फिर सुरेन्द्र के पिता जी की तब्दीली हुई और हमें पेशावर से रावलपिण्डी का टिकट कटाना पड़ा। परन्तु ठहरिये, मुझे अभी एक छोटी सी घटना बतानी है। एक दिन सुरेन्द्र मेरे कमरे में बैठा श्रीमती आहलूवालिया के बारे में बढ़ बढ कर बातें बना रहा था कि वह मुझे उर्मिला से भी अधिक प्यार करती हैं। कहती हैं जैसे यह उर्मिला का घर है वैसे तुम्हारा घर है।

मेरे मुंह से सहसा निकल गया, "मजा तो तब है जब तुम भी उर्मिला की भांति अंगूरों के गुच्छे बिना पूछे तोड़ कर दिखाओ।"

"मुझे क्या आवश्यकता है?" उसने मुंह बनाते हुए कहा,

"मैं जब चाहूं, जितने चाहूं स्वयं ही मिल जाते हैं।"

"तोड़ भी सको?" मैंने कटाक्ष किया।

"तोड़ क्यों नहीं सकता? मुझे कौन रोकने वाला है?"

"तो फिर दिखाओ तोड़ कर।"

"चलो मेरे साथ" सुरेन्द्र ने कुर्सी से उठते हुए कहा।

"मैं बाहिर ठहरूंगा।"

"अच्छा तुम बाहिर ही ठहरना। मैं गुच्छे तोड़ कर तुम्हारी ओर फैंकता जाऊंगा।"

श्री आहलूवालिया के बंगले में अंगूरों की एक बेल बाहिर की दीवार के पास एक पीपल के वृक्ष पर चढ़ाई हुई थी। और यह वृक्ष इस प्रकार पूर्व और पश्चिम दिशा में फैला हुआ था कि यदि मनुष्य किसी प्रकार बंगले में घुस कर इस वृक्ष पर चढ़ जाए तो बड़ी सुगमता से अंगूरों के गुच्छे तोड़ २ कर बाहिर फैंक सकता था। सुरेन्द्र ने भी इसी वृक्ष का सहारा लिया।

और माली की नजर बचाकर चुपके से वृक्ष पर चढ़ गया। फिर लगे हाथ उसने दो बड़े २ गुच्छे तोड़ कर मेरी ओर बढ़ा दिये और हाथ बढ़ा कर एक तीसरे गुच्छे को जोर से खैंचा। शरड़ की सी आवाज पैदा हुई। फिर वह गुच्छा तड़ाख से टूटा और इससे पूर्व कि वह गुच्छा मेरी ओर फैंकता, माली के चिल्लाने की आवाज आई।

"कौन होत?"

मैं तो यह आवाज सुनते ही भाग निकला और वह गुच्छा सुरेन्द्र के हाथ में लटका ही रह गया।

"मैं हूं" सुरेन्द्र ने वृक्ष से नीचे उतरते हुए कहा।

परन्तु माली पर सुरेन्द्र की "मैं हूं" का कोई प्रभाव न पड़ा। और वह उसको बांह से पकड़ कर श्रीमती आहलूवालिया के पास ले गया।

"क्या है?"—श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र को इस प्रकार पकड़ कर लाते हुए देखा तो पूछा।

"बीबी जी, इस छोकरे ने तो सगरी बेल का सत्यानाश मार दिया।"

"छोड़ो सुरेन्द्र को।" उर्मिला एक ओर से चिल्लाई।

सुरेन्द्र की यह दशा थी कि मुख कानों तक लाल हो रहा था और अंगूर का गुच्छा ऐसे लग रहा था कि हाथ से अब गिरा कि अब गिरा।

"छोड़ दो इसे" श्रीमती आहलूवालिया ने माली को संकेत किया।

"इधर आओ, सुरेन्द्र" और सुरेन्द्र सिर झुकाए धीरे २ चलता हुआ श्रीमती आहलूवालिया के समीप पहुंच गया।

"तुम्हें चोरी की क्या आवश्यकता पड़ी?" श्रीमती

आहलूवालिया ने उसे कुर्सी पर बैठने का संकेत करते हुए पूछा।

परन्तु सुरेन्द्र सम्भवतः अपने आप को अपराधी समझ रहा था उसने कुर्सी पर बैठने का साहस न किया और खड़े २ मरी आवाज़ में कहा।

"यह चोरी कैसे हुई ?"

"किसी की वस्तु को बिना उसकी आज्ञा के लेना चोरी है ?"

"परन्तु आप ही ने तो कहा था कि यह भी मेरा घर है। अपने घर से कोई वस्तु लेना तो चोरी नहीं कहलाता।"

"यह तो ठीक है।" श्रीमती आहलूवालिया ने निरुत्तर होते हुए कहा।

"फिर भी तुम्हें मुझ से पूछ लेना चाहिए था।"

"जी आप से पूछता और भैय्या से हार जाता ?"

"अरे तो क्या भैय्या से शर्त लगाकर आए थे ?"

"जी कुछ ऐसी ही बात थी।"

"क्या बात थी ?"

"जी, बस मैंने कहा था कि आप मुझे उर्मिला की भांति प्यार करती हैं।"

"तो इस में क्या संदेह है।"

"जी, यह तो मैं जानता हूं न। परन्तु वह कहता था कि हम तब मानेंगे अगर इस बेल से अंगूर तोड़ कर लाओ और तुम्हें कोई कुछ न कहे।"

"अच्छा, यह बात थी। मैं भी आश्चर्य में थी कि मेरे अच्छे बेटे सुरेन्द्र ने यह क्या नई आदत सीखी।"

"जी बस हो ही गई मुझसे भूल और शर्त भी मैं हार गया।"

"नहीं, नहीं ! यह क्यों ? माली, ओ माली !"

"जी बीबी जी।"

"सुरेन्द्र को दो बड़े गुच्छे और तोड़ कर ला दो।"

"बहुत अच्छा, बीबी जी" और माली सलाम करके चला गया।

"नहीं जी, मैं और नहीं लूंगा।"

"क्यों नहीं लोगे यह तुम्हें लेने ही पड़ेंगे अन्यथा भैय्या को क्या दिखाओगे।"

"यह जो है। यह दिखा दूंगा।

"ऊं हूं! हम तो यह देंगे ही।" इतने में माली अंगूर के गुच्छे ले आया और श्रीमती आहलूवालिया ने सुरेन्द्र के 'न' 'न' करते हुए भी उसे वह गुच्छे पकड़ा ही दिए। सुरेन्द्र चला तो उर्मिला भी साथ हो ली। गेट के पास पहुंचते ही उर्मिला ने चंचलता से कहा,

"चोटा"

"तू चोटी" सुरेन्द्र ने उसी ढंग से उत्तर दिया।

"क्यों मैं क्यों चोटी ? मैं ने कोई अंगूर चुराए हैं ?"

"मैं ने कब चुराये हैं ? मैं ने तो तोड़े हैं।"

"तोड़े हैं तभी तो चुराये हैं।"

"चल, चल, बहुत बातें न बना।"

"चीखते क्यों हो ? चोटे कहीं के।"

"तू नहीं चोटी जो कल मेरी गेंद उठा ले गई थी ?"

"तुम चोटे हो तुम ने अंगूर चुराये हैं।"

"और मेरी रंगदार दस्तों वाली रस्सी किसके पास है ?"

"मेरी गुड्डो भी तुम्हारे पास है।"

"ले लो अपनी गुड्डो। दे दो मेरी रस्सी।"

"तुम पहले मेरी तस्वीरों वाली पुस्तक लाओ।"

"और तुम मेरी फौंटेन पैन की स्याही लाओ ।"

"वह तो समाप्त हो गई।"

"तो वह भी गई।"

"क्यों वह तुम्हारे पास है।"

"है सही पर दूंगा नहीं।"

"मैं ममी से कहूंगी।"

"जाओ कहो मैं कोई तुम्हारी ममी से दबता हूं ?"

"मेरी पुस्तक दे दो अन्यथा मैं तुमसे बोलूंगी भी नहीं।"

"न बोलो—तुम्हारी कौन खुशामदें करता है ?"

"तुम ही करोगे, देख लेना।"

"बड़ी आई खुशामद कराने वाली। तुम सी बहुत देखी हैं हम ने।" और कहते २ सुरेन्द्र झुंझलाता हुआ अपने बंगले में चला गया उर्मिला कुछ क्षण तो वहां खड़ी क्रोध से सुरेन्द्र की ओर देखती रही। फिर मुंह फैलाए अपने कमरे में चली गई

सुरेन्द्र ने अपने कमरे में पहुंच कर अंगूर के गुच्छे एक ओर रख दिए और कुर्सी पर बैठ कर कुछ देर क्रोध से होंठ काटता रहा। फिर व्याकुल होकर पलङ्ग पर लेट गया। परन्तु वहां भी करवटें लेने के अतिरिक्त उससे कुछ भी न हो पाया। उसे इस बात का इतना दुख न था कि वह चोरी करते हुए पकड़ा गया है। उसे तो यह दुख खाए जा रहा था कि उर्मिला उस से रूठ गई है। और वह मन में भली भांति जानता था कि उर्मिला के बिना उसका मन बहुत उचाट रहेगा। परन्तु उसका आत्माभिमान उसे इस बात की आज्ञा न देता था कि वह ऐसा समझौता कर ले जो कभी भी किसी भी प्रकार हास्यास्पद प्रमाणित हो।

उधर उर्मिला की यह दशा थी कि वह कुछ देर तो मन

को काबू किए बैठी रही। जब देखा कि पानी सिर से गुजर रहा है तो चुपके से उठी और धीरे २ चलती हुई सुरेन्द्र के कमरे तक पहुंच गई। अन्दर झांक कर देखा तो सरेन्द्र को मुंह फैलाए पलङ्ग पर लेटा पाया। वह दबे पांव चलती हुई उसके पास पहुंच गई और कम्पित स्वर में बोली,

"सुरेन्द्र"

परन्तु सुरेन्द्र सुन कर भी मौन रहा। उर्मिला ने पुनः पुकारा,

"सुरेन्द्र"

और यद्यपि सुरेन्द्र का मन बोलने को व्याकुल था, तो भी उसने अच्छा यही समझा कि अब भी मौन रहा जाए।

"सुरेन्द्र" अब की उर्मिला ने साहस से सुरेन्द्र को छूते हुए पुकारा।

"क्यों क्या है ?" सुरेन्द्र ने उर्मिला की ओर करवट लेते हुए कहा।

"मैं तुम्हें मनाने आई हूं, सुरेन्द्र !"

"हम नहीं मानेंगे।"

"देखो सुरेन्द्र मुझ से भूल हो गई, क्षमा कर दो।"

"ऊं हूं ! हम कोई तुम्हारी खुशामदें करने वाले हैं।"

"नहीं, तुम नहीं। मैं जो तुम्हारी खुशामदें करने वाली हूं।"

"न जी, तुम पीछे बातें बनाओगी।"

"शपथ ले लो जो कोई बात करूं।"

"ऊं हूं ! हम तो चोटे हैं।"

"नहीं, तुम नहीं मैं हूं। लो अब तो मान जाओ। देखो तुम्हारे पांव पड़ती हूं।"

सुरेन्द्र अब अधिक इन्कार न कर सका। उसने पलंग से उठते हुए कहा,

"तुम्हारी तस्वीरों वाली पुस्तक ला दूं?"

"नहीं, मुझे नहीं चाहिए। आओ खेलें।"

"क्या खेलोगे?"

"घर, घर"

और उसी बाग़ के उस विलग कोने में वही खेल खेला गया। उस दिन और आने वाले कई दिन। और उन सब दिनों में उर्मिला ने सुरेन्द्र को कभी भी रूठने का अवसर न दिया और एक दिन आया कि दोनों एक दूसरे को खूब गले मिले और भीगी आंखों और कम्पित होठों से कभी न भूलने के वचन देते हुए उन्होंने एक दूसरे को विदाई दी और हम रावल-पिण्डी चल दिए। सुरजीत ने चलते चलते भी एक अवसर निकाल लिया और सुरेन्द्र को चाकलेट का डिब्बा देने के बहाने अपने कमरे में ले जाकर खूब खूब उसके गाल टमाटर किए।

तीसरा परिच्छेद

इसे सौभाग्य मनिये या दुर्भाग्य। हमें रावल पिण्डी में कोई अच्छा बंगला किराए पर न मिल सका। इसलिए हमें विवश होकर बूढ़ मुहल्ला में एक बड़ा सा मकान किराए पर लेना पड़ा। सुरेन्द्र इन दिनों मैट्रिक में पढ़ रहा था और मुहल्ले की घनी आबादी में वह एकांत न मिलता था जो अध्ययन के लिए अनिवार्य है। इसलिए यह परिवर्तन उसे दुखदाई लगा। परन्तु मैं अध्ययन समाप्त कर चुका था और चाचा जी का विचार था कि वहीं राजा बाजार में मुझे मनियारी की दुकान खोल देंगे, मैं सन्तुष्ट था कि घर से बहुत निकट रहूंगा। मुझे शीघ्र ही एक अच्छा सा मुहूर्त देख कर उचित स्थान पर मनियारी की दुकान खोल दी गई। थोड़े ही दिनों में काम चल निकला और मैं चाचा जी की इस कृपा पूर्ण सहायता के कारण जीविका निर्वाह से निश्चिंत हो गया। सुरेन्द्र के लिए भी मेरा मनियारी की दुकान खोलना कुछ कम लाभदायक न था क्योंकि वह देख रहा था कि दिन प्रतिदिन उसकी रूमालों और नकटाईयों की आवश्यकता बढ़ती जा रही है। तेल तो वह कौट्टी के अतिरिक्त कोई प्रयोग में ही न लाता था। मुझे भी कभी उसकी दिलचस्पियों में विघ्न बनने का विचार न आया। और एक प्रकार से सम्भवत: मेरा स्वार्थ भी था क्योंकि मैं चाहता था कि वह सुरेन्द्र जो मुझ से हर दृष्टि से उत्तम है, कम से कम साधारण आवश्यकताओं के लिए तो मुझ पर आश्रित् है। सम्भव है आप इस उच्चता की भावना को मिथ्या समझें और अब तो मुझे भी कभी २ अपने

इस बोदे पन पर हंसी आती है। कुछ हो उस समय तो मुझे अपने उस बड़प्पन का बुरी तरह से ध्यान था और कई बार इसी कारण मैंने स्वयं उसे बुला कर नये २ रूमालों और नकटाईयों के नमूने दिखाए थे।

कुछ ही समय के पश्चात मेरी रावल पिण्डी के एक सम्पन्न परिवार में सगाई हो गई और इसके कुछ महीने पश्चात शादी भी। सुरेन्द्र इन दिनों दसवीं की परीक्षा दे चुका था।

सुहाग रात अपने अंतिम दौर में थी। हल्की २ सफेदी चारों ओर फैलती जा रही थी। मैं अपने मन के बचे खुचे अरमान निकाल रहा था कि द्वार पर खटखटाहट हुई। पहले धीरे फिर कुछ जोर से। मैंने परेशान होकर रजाई से मुंह निकाला और पूछा, "कौन है?"

" जी मैं" सुरेन्द्र ने दबी आवाज़ में कहा।

अब मैं उठने के अतिरिक्त क्या कर सकता था। मैंने शीघ्र ही साथ के पलंग अर्थात् अपने पलंग के विस्तर पर कुछ सिलवटें डाल लीं। रज़ाई को पूरे बिस्तर पर फैलाया और फिर द्वार खोल दिया।

"वह मुस्कराता हुआ अन्दर प्रविष्ट हुआ मानो प्रभात की श्वेतता उसके होठों पर ही फूट रही थी।

"आओ सुरेन्द्र" मेरी अर्धांगनी ने पलंग पर बैठते हुए कहा।

"नमस्ते भाभी जी" और मेरी उपस्थिति की अवहेलना करते हुए वह मस्ती से चलता हुआ मेरी पत्नि के पलंग के पास पहुंच गया। फिर एकाएक रुक कर भयभीत स्वर में कहने लगा।

"भाभी—ई—ई—तकिये से हट जाना।" जैसे उसने कोई भयानक वस्तु तकिये के पास देख ली हो। मेरी पत्नि एक

ओर हट गई। उसने गम्भीरता से तकिया उठा कर एक ओर रख दिया। नीचे से मिठाई का लिफाफा निकाला। उसे खोला और उनमें से एक गुलाब जामुन निकाल कर मुंह में रखते हुए कहने लगा।

"देखिए भाभी जी, मिठाई का लिफाफा तकिए के नीचे रखने से तकिये पर धब्बे पड़ गये। अच्छा हुआ जो मैं समय पर पहुंच गया और लिफाफा निकाल लिया अन्यथा चादर भी खराब हो जाती।" फिर बर्फी के दो बड़े २ टुकड़े मुं में रख कर मुस्कराते हुए वृद्धि की,

"भाभी जी, मिठाई सदा प्लेट में डाल कर मेज पर रखी जाती है।"

हम अभी उसके विनोद पर हंस रहे थे कि वह कलाकंद का एक बड़ा सा टुकड़ा मुंह में रख कर मुस्कुराता हुआ द्वार की ओर चल दिया।

"ठहरो, सुरेन्द्र !" मैंने संभलते हुए कहा, "यह क्या कि बस आए और चले गये। दो क्षण अपनी भाभी के पास तो बैठो।"

"जी बस, फिर आऊंगा।" उसने पलट कर देखते हुए कहा।

"परन्तु प्रातःकाल ही आए कैसे ? तुमने यह भी तो नहीं बताया।"

"जी बस आ गया।" उसने स्पष्ट वादिता से काम लिया, "मैंने कहा कि यदि देर से गया तो फिर, तो फिर मिठाई···"

इससे आगे वह कुछ न कह सका। एक चंचल मुस्कान उसके मुख पर खिल उठी। उसकी आंखें एक विचित्र ढंग से चमकी और वह 'टह, टह' हंसता हुआ कमरे से बाहिर चला गया।

(२)

सुरेन्द्र को न जाने कौन बता देता था कि आज मिठाई शीशे के पीछे है और आज फल ड्रेसिंग टेबिल की ड्राज में है परन्तु अब तक इसका हस्तक्षेप प्रभातकाल तक ही सीमित था बस प्रातः काल वह हमारे लिए अलार्म था। द्वार खुला और वह सीधा मिठाई की ओर बढ़ा। हाथ बढ़ाया, मिठाई उठाई और मुस्कराता हुआ कमरे से बाहिर चला गया जैसे वह स्वयं ही मिठाई रखकर किसी काम के लिए बाहिर गया हो और काम से निवृत्त होकर मिठाई लेने आया हो। विचित्र बात तो यह थी कि एक सप्ताह में हम सात स्थान बदल चुके थे और एक भी उसके हाथों से सुरक्षित न रहा था परन्तु एक दिन तो............

उस सायं को बाजार से मैं विशेष तौर से उत्तम खताईयां बनवा कर लाया था। अपने कमरे में कपड़े उतारने के पश्चात मैंने उन्हें बड़े ध्यान से एक बड़े से चित्र के पीछे छुपा दिया था और स्वयं खाना खाने रसोई में चला गया था। मैं दुकान से देर से आया करता था। अतः घर के अन्य लोग मेरी प्रतीक्षा किए बिना खाने से निपट लेते थे। केवल मेरी पत्नि मेरी प्रतीक्षा किया करती थी। आज भी वह मेरी प्रतीक्षा कर रही थी। हम अभी खाना खा ही रहे थे कि सुरेन्द्र मुस्कुराते हुआ कमरे में आया और कहने लगा,

"भैय्या मैं ने एक पद्य लिखा है।"

"अच्छा अब कवि भी बनने लगे।"

"जी बस क्या किया जाए।" उसने भोली सी शक्ल बनाते हुए कहा, "पेट को खाना अधिक मिल जाए तो स्वयं ही उबका-

ईयां आने लगती हैं।"

मैं उसके व्यंग को कुछ समझ न सका। परन्तु अपनी विवशता छुपाने के लिए कहा।

"अच्छा सुनाओ। देखें तुमने कैसा पद्य कहा है।"

"बस अत्यन्त मनोरंजक है।"

"सुनाओगे भी या बातें ही बनाते रहोगे।"

"सुनिये, बस आप तो रुष्ट होने लगे।" उसने खंखारते हुए कहा, "कहा है कि—

जिसने न खाईयां खताइयां।
वह क्या करेगा कमाइयां॥

मेरे दिल में झट से खटक गई। मैं ने चाहा कि उठ कर चित्र के पीछे देख आऊं। वह भी मेरी नियत को ताड़ गया और एक विचित्र ढंग से पुचकारते हुए कहने लगा,

"पूह—बैठ जाईये भाई साहिब। आपने दूसरा पद तो सुना ही नहीं। कहा है कि—

तस्वीर के पीछे खताइयां।
वह हमने आज उड़ाइयां॥

और फिर जोर से खिलखिला कर हंसता हुआ कमरे से बाहिर भाग गया।

(३)

मेरी पत्नि को सुरेन्द्र की यह भोली साजिशें कुछ ऐसी पसंद आईं कि वह जान बूझकर सुरेन्द्र के लिए मिठाई आदि छुपा रखती। और सुरेन्द्र को ईश्वर दे। वह इस चतुराई से मिठाई उड़ा ले जाता कि इधर वह रख गईं और एक क्षण पश्चात आकर देखा तो मिठाई गायब। परन्तु अब वह इस का बदला उतारने लग गया था और आए दिन भाभी की तेल, साबुन,

पौडर, लैविण्डर, सुर्खी, बिंदी आदि से सेवा करने लगा। यद्यपि यह सब बोझ मुझ गरीब पर ही पड़ रहा था और एक प्रकार से वही बात हो रही थी कि मियां जी की जूती, मियां जी के सिर। तो भी मैं मौन था क्यों कि वह मुझे इतना प्रिय था कि मैं उसकी भाभी के सामने उसका निरादर करना न चाहता था और वह भी प्रसन्न थी' क्यों कि उन्हें यह वस्तुएं अत्यन्त प्रिय थीं। उनके लिए यह बात निरर्थक थी कि यह वस्तुएं आती कहां से हैं। बस केवल यही पर्याप्त था कि उन्हें यह वस्तुएं मिल रही थी और खूब खुले दिल से।

एक दिन जब मैं दोपहर का खाना खाने घर आया तो देखा कि श्रीमती जी एक सफेद बोसकी के रुमाल पर पत्तियां काढ़ रही हैं। मैं ने मुस्कुराते हुए पूछा,

"आज यह परिश्रम किस लिए हो रहा है?"

"मैं ने कहा" मेरी धर्म पत्नि ने रूमाल से आंखें हटाते हुए उत्तर दिया, "हम भी सुरेन्द्र को कुछ भेंट देंगे।"

"हूं" मैं ने फीकी हंसी हंसते हुए कहा, "तो यह सुरेन्द्र की सेवाए हो रही हैं?"

"जी" उन्होंने उसी स्वर में कहा।

"और हमारे लिए?" अंततः मैं ने अपना स्वार्थ प्रकट कर ही दिया

"आप कोई बालक हैं?" मेरी पत्नी ने मुस्कुराते हुए कहा।

मानो सोलह वर्ष का सुरेन्द्र अभी बालक ही था। मैं विवश होकर मौन हो गया। और आप ही बताइये इससे आगे क्या कहता।

मेरा भूंडापन देखिये कि मैं ने सुरेन्द्र से इस बात का जिक्र कर दिया कि उसकी भाभी उसके लिए एक रेशमी रूमाल

पर पत्तियां काढ़ रही है। यद्यपि साथ ही मैंने उसे मना कर दिया कि वह अपनी भाभी से इस का उल्लेख न करे क्योंकि वह उसे एकाएक चकित करना चाहती है। लेकिन वह एक ही शैतान था। भाभी से तो उसने मेरे कहने के अनुसार न कहा परन्तु उधर उसकी भाभी कमरे से बाहिर हुई, इधर इस ने झट से अन्दर जाकर उसकी काढ़ने वाली पिटारी को उलट-पुलट करना शुरू कर दिया। एक दिन वह इसी उलट-पुलट में लगा हुआ था कि इतने में मेरी पत्नी कमरे में प्रविष्ट हुई और सुरेन्द्र को पिटारी के साथ देखकर तेज़ी से उसकी ओर बढ़ी। सुरेन्द्र ने घबरा कर पीछे की ओर देखा और मेरी पत्नी को देखकर घबरा गया।

"ओह—भाभी—मेरी तो जान ही निकल गई"।

"क्यों, क्या हुआ?" मेरी पत्नी ने परेशान होते हुए पूछा।

"मैं ने तुम्हारे पांव की ध्वनि सुन कर समझा कि तुम आ गईं और मुड़कर देखा तो सच मुच तुम आ गईं"।

मेरी पत्नी विवश हंस दी। फिर हंसी पर काबू पाकर पूछने लगी।

"अच्छा यह बताओ कि तुम यहां क्या करने आए थे?"

"यूं ही चला आया था"।

"यूं ही तो चले आए थे पर मेरी पिटारी को क्यों उलट पुलट कर रहे थे?"

"कुछ लेना था"।

"क्या?"

"यही तो मुझे याद नहीं रहा"।

"सच-सच नहीं बताओगे?"

"अब याद आए भी। ठहरो! सोचूं। और उसने सिर खुजलाते हुए कहा।

"अरे हां! वह जो मेरी कैमिस्ट्री की कापी है न वह बड़ी बड़ी जिसमें बीकर, सुराही आदि की शक्लें बनी हुई हैं। समझ गईं?

"नहीं"

"ओह! तुम्हारी तो समझ ही खराब है। जरा ठहरो मैं वह कापी ले आऊं"।

"नहीं। कापी की आवश्यकता नहीं। स्पष्ट बात करो"।

"बस बात यह हुई कि उस कापी की सिलाई टूट गई थी। मैंने कहा भाभी की पिटारी से जरा सुई धागा ले आऊं और.................."

परन्तु इससे पूर्व कि सुरेन्द्र वाक्य पूर्ण करता सामने के मकान की खिड़की खुली और एक हल्की, सुरीली आवाज सुनाई दी।

"राज!" (मेरी पत्नी का नाम)

मेरी पत्नी ने पलट कर उस ओर देखा और अपनी सहेली कृष्णा का मुस्कराता हुआ मुख देख कर खिंची हुई खिड़की के समीप पहुंच गई। सुरेन्द्र ने उस ओर मुंह किया और प्रथम बार सौन्दर्य की चमक ने उसकी आंखों में चका-चौंध पैदा कर दी। कृष्णा कान्ता मेरी पत्नी की प्रियतम सहे-लियों में से थी। उसके विषय में केवल इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि उस सा कोमल सौन्दर्य बहुत कम देखने में आता है।

"कब आई?" मेरी पत्नी ने मुस्कराते हुए पूछा।

"आज ही तो आ रही हूं"।

"कौन है ?" सुरेन्द्र ने संभलते हुए धीमे स्वर में अपनी भाभी से पूछा।

"मेरी सहेली "।

"क्या नाम है ?"

"कृष्ण कान्ता "।

"नाम तो मजेदार है "।

"क्या कहता है तुम्हारा देवर ?" वही आवाज़ फिर सुनाई दी।

"कहता है तुम्हारी सहेली तो मजेदार है।" मेरी पत्नी ने चंचलता से उत्तर दिया।

"सुरेन्द्र का मुख लज्जा से लाल हो गया। उधर किसी ने झेंप कर खट से खिड़की बन्द कर दी।

इसके दो ही दिन पश्चात एक विचित्र घटना घटी।

मेरी पत्नी किसी काम से अपने मैके गई हुई थी। सुरेन्द्र फिर उसके कमरे की जांच कर रहा था कि एकाएक सामने वाले मकान की खिड़की खुलने की आवाज़ सुनाई दी उसने चौंक कर उस ओर देखा और खिड़की में फिर चन्द्र-वदन सुन्दरी को बैठे पाया।

"सुरेन्द्र जी—ई—ई—ई—" उस दामिनी ने विचित्र स्वर से पुकारा।

"जी" सुरेन्द्र ने धीमी आवाज में उत्तर दिया।

"राज घर है ?"

"जी नहीं, वह तो अपने मैके गई है "।

"अच्छा ! तो तुम अकेले हो "।

"जी"

फिर खट से खिड़की बन्द हो गई और सुरेन्द्र पुनः आन-

बीन में लग गया। अभी कुछ ही क्षण बीते होंगे कि किसी के सीढ़ियों पर चढ़ने की ध्वनि सुनाई दी। उसने झट से रूमाल पटारी में रख दिया और स्वयं ड्रैसिंग टेबिल के समीप खड़ा होकर बालों में कंघी करने लगा।

"सुरेन्द्र जी—ई ई ई—" एक सितार की झंकार की सी कपकपाती हुई आवाज सुनाई दी। इसके साथ ही किसी ने कमरे में प्रवेश किया। सुरेन्द्र ने तड़फ कर उस ओर मुख किया और एक टक देखता रह गया।

कृष्णा कान्ता धीरे २ उसकी ओर बढ़ रही थी।

"राज घर पर नहीं ?" कृष्णा ने इतनी सादगी से पूछा मानो यह प्रश्न वह प्रथम बार कह रही है। सुरेन्द्र को ऐसा लगा कि उसके मोहक अधरों की मन-मोहिनी हरकत ने जोर से उसके हृदय में चुटकी ली है।

"जी नहीं"। सुरेन्द्र ने संभलते हुए उत्तर दिया। फिर हट कर पलंग पर बैठ गया।

"अच्छा"। कृष्णा ने शांत स्वर में कहा और फिर स्वयं भी उसके पास ही पलंग पर बैठ गई।

एक क्षण के लिए कमरे में कम्पा देने वाला सन्नाटा छा गया। सुरेन्द्र का हृदय जोर २ से धड़कने लगा मानो किसी ने निर्दयता से लगोजा के तारों को छेड़ दिया हो या जैसे किसी ने उसके सीने में पारा रख दिया हो। उस ने एक उचटती हुई दृष्टि कृष्णा के मुख पर डाली। उस के साथ ही उसे ऐसे लगा कि यदि एक क्षण और यह सुन्दरता की ज्वाला इसी प्रकार मौन रही तो उसका हृदय इतनी तेजी से धड़केगा कि सम्भव है होंठों तक पहुंच कर अपना समस्त भेद खोल डाले।

"सुरेन्द्र जी !" फिर वही स्वर्गिक स्वर सुनाई दिया।

"जी !" सुरेन्द्र ने भावों पर नियन्त्रण करते हुए कहा।

"आप कितने अच्छे हैं"।

एकाएक सुरेन्द्र को एक शरारत सूझी। उसने मुस्कराते हुए कहा,

"एक मन इकीस सेर"

"अर्थात् ?" बेचारी कृष्णा ने आश्चर्य से पूछा।

"जी यह मेरा तोल है"।

"अरे! अच्छा, अच्छा !!" और कृष्णा बेकाबू होकर खिलखिला उठी। सुरेन्द्र को ऐसे लगा जैसे किसी ने दूरस्थ मंदिर में बहुत सी घण्टियां बजा दी हों या जैसे कोई तेजी से जल-तरंग बजा रहा हो।

"आपकी क्या सेवा की जाए? सुरेन्द्र ने क्षण भर के पश्चात् पूछा।

"आप यहीं बैठे रहिये, बस"।

और सुरेन्द्र सिर से पांव तक कांप उठा। उसे ऐसे अनुभव हुआ कि यदि कृष्णा ने केवल एक बार उसकी ओर फिर उन जादू भरे नेत्रों से देख लिया तो वह उस दामिनी के लावण्य से मन्त्र-मुग्ध होकर उसकी गोदी में गिर पड़ेगा।

"आपकी भाभी तो अत्यन्त सौभाग्यवाती हैं"। कृष्णा ने मुस्कराते हुए कहा।

"भाभी आएगी तो उससे कह दूंगा"।

"क्या ?"

"यही कि आप कहती थीं वह अत्यन्त सौभाग्यवती है"।

"कैसे सौभाग्यवतो है यह तो आपने पूछा ही नहीं"।

"अब बता दीजिए"

"इसलिए कि आप उसके देवर हैं"।

"बस !"

"और क्या यह कम है"।

"तब वह अत्यन्त अभागी है"।

"कैसे ?"

"मैं उसकी सब मिठाई विठाई चटम कर जाता हूं"।

"बस !"

"यह क्या कम है ?"

"काश कि तुम मेरे देवर होते !"

"फिर ?"

"मैं तुम्हें ढेरों मिठाई खिलाती"।

"और अगर पाचन शक्ति खराब हो जाती ?"

"ऐसा क्यों होता मेरे चांद को !" कहते २ कृष्णा ने बढ़कर सुरेन्द्र का मुख अपने हाथों में ले लिया और उसकी आंखों से आंखें मिला दीं। सुरेन्द्र को ऐसा अनुभव हुआ कि जैसे अनजाने में वह बिजली की तारों से छू गया हो। उसकी रग २ तड़प उठी। उसकी धमनियां इस प्रकार फड़कने लगीं मानो अभी वह उछल कर शरीर से बाहिर आ जाएंगी। एक क्षण के लिए उसे दो चमकती हुई बिजलियां दिखाई दीं। दो ऐसी व्याकुल आंखें जो ईश्वर जाने किस जन्म से भूखी थीं और अब अपने शिकार पर जम रही थीं। सहसा उसे ध्यान आया। लोग कहते हैं कि सर्प की आंखों में चुम्बक का सा आकर्षण होता है और यदि कोई उनकी ओर एक बार देख ले तो उसमें हिलने की शक्ति शेष नहीं रहती। वह सोचने लगा कि क्या सर्प की आंखों में इससे भी अधिक शक्ति है और उस ने घबरा कर आंखें बन्द कर लीं।

"सुरेन्द्र जी"। किसी ने मदन-स्वर में कहा।

"जी" सुरेन्द्र ने उसी प्रकार आंखें बन्द किए उत्तर दिया।

"आप कितने प्यारे हैं"।

सुरेन्द्र चुप रहा।

"आप के देखने से मन नहीं भरता"।

सुरेन्द्र अब भी चुप रहा। उसका अंग प्रत्यंग कांप उठा। सहसा उसे ऐसा अनुभव हुआ कि किसी ने प्रकम्पित होंठ उसके होठों से लगा दिए हैं। वह सोचने लगा कि अंततः सर्प ने आक्रमण कर ही दिया। परन्तु उसे आश्चर्य था कि यह कैसा आक्रमण है जिसमें एक साथ ही कटुता भी है और मधुरता भी। जिसमें उत्तेजना भी है और शान्ति भी। वह कुछ क्षण मौन रहा। फिर घबरा कर पीछे हट गया।

"सुरेन्द्र जी"।—किसी ने भावासक्त स्वर में पुकारा और उसे ऐसा अनुभव हुआ कि दूर कोई जादूगर पवित्र अग्नि में आहुति डालता हुआ मन्त्र अलाप रहा है।

उसने धीमे स्वर में उत्तर दिया 'जी' और फिर उसे सहसा किसी वस्तु के गले में अटक जाने का अनुभव हुआ। इसके साथ ही उसे अपना मस्तिष्क सुन्न होता महसूस हुआ। उसे ऐसा लगा कि उसके आस पास की सभी वस्तुएं बहुत दूर चली गई हैं। और उससे मीलों दूर बैठी हुई कृष्णा किसी निर्जन स्थान से उसे पुकार रही है।

"सुरेन्द्र जी! क्या रूठ गये?"

उसने चाहा कि कृष्णा को कोई उत्तर दे। एक आध बार उसके होंठ हिले भी परन्तु वह कुछ कह न सका।

"क्या मुझ से बोलना पसन्द नहीं? कृष्णा ने विचित्र मोहक स्वर में पूछा।

परन्तु सुरेन्द्र फिर भी मौन रहा जैसे किसी ने उसकी

बोलने की शक्ति छीन ली हो।

"क्या मैं चली जाऊं ?"

"और सुरेन्द्र को ऐसा आभास हुआ जैसे किसी ने उसके मस्तिष्क पर ज़ोर से हथौड़े की चोट लगाई हो। उसने चाहा कि हाथ बढ़ाकर कृष्णा को पकड़ ले और उसे खैंच कर अपने धड़कते हुए सीने से लगा लेता कि किसी प्रकार इसकी अनंत धड़कन में कुछ कमी तो हो। परन्तु उसके हाथों ने हिलने से इन्कार कर दिया और वह उसी प्रकार निश्चल बैठा रहा जैसे वह मनुष्य नहीं पाषाण मूर्ति हो। फिर एकाएक उसे समस्त संसार घूमता हुआ दिखाई दिया। किसी की तड़फा देने वाला पग ध्वनि सुनाई दी। फिर सीढ़ियों से उतरने की ध्वनि और उसे एकाएक ऐसा अनुभव हुआ कि चारों ओर अन्धेरा छा गया है और वह जीवन ज्योति जिससे कमरा प्रकाशमान था एकाएक बुझ गई। वह सिर पकड़ कर रह गया और उसने जोर से आंखें बन्द कर लीं।

कुछ क्षण पश्चात् उसे वह कमरा अत्यन्त सूना लगा। उस ने फटी २ दृष्टि से इधर उधर देखा। वह सभा उजड़ चुकी थी जिसमें वह कुछ क्षण पूर्व चहक रहा था। वह गान बन्द हो चुका था जिसने उसके हृदय के भावुक तारों को तड़पा दिया था और वह सितार टूट चुका था जिससे स्वर्गिक राग की गानें उठ रही थीं। उसने भागकर सीढ़ियों में झांका परन्तु वह पूर्णतः खाली थीं। बरामदा भी खाली था। ड्योढ़ी भी खाली थी। केवल किसी की पग ध्वनि अभी तक उसके मस्तिष्क में गूंज रही थी। या शायद उसका हृदय जोर २ से धड़क रहा था।

चौथा परिच्छेद

कुछ दिन बीत गए।

एक दिन मैं दोपहर का खाना खाने घर आया तो यथा-पूर्व अपनी पत्नी को प्रतीक्षा न करते पाकर कुछ व्याकुल सा हो गया। मैं खाना खाने के, बजाए सीधा उसके कमरे में पहुंचा। देखा तो बड़ी निर्दयता से कमरे की वस्तुओं को उलट पुलट रही है।

"खैर तो है ?"—मैंने उसके निकट पहुंचते हुए कहा।

"हां, खैर है। उसने मेरी ओर मुड़ने की अवाश्यकता समझे बिना ही कहा "अभी रूमाल पूरा करके पिटारी में रखकर गई और अब आकर देखती हूं तो रूमाल का कहीं चिन्ह तक नहीं। सब कुछ उलट कर देख बैठी हूं। न जाने कहां गायब हो गया ?"

"दराज देखे"।

"जी ! तीन बार"।

"कपड़ों की, अल्मारी ?"

"वह खुली पड़ी है"।

"और तुम्हारी पटारी ?"

"वह उलटी रखी है"।

अब केवल एक ही बात शेष रह गई थी कि कहीं मेरी पत्नी ने रूमाल को ड्रेसिंग टेबिल या छोटी अलमारी के ऊपर रख दिया हो और वह हवा के झोंके से उड़कर उनके पीछे

गिर गया हो। इस लिए मैं फर्नीचर को अपने स्थान से सरकाने लगा।

"क्यों भैय्या!"—सुरेन्द्र ने कमरे में पांव रखते हुए कहा, "यह आप दोनों को साफ़ सुथरे कमरे से चिढ़ है क्या?"

"तुम आ गये?—बस अब रूमाल को मिलना होगा तो भी न मिलेगा"। मैंने तङ्ग आए हुए कहा।

'रूमाल?—तो क्या केवल एक रूमाल की खोज में इतना कुछ हो रहा है?"

"हां, सुरेन्द्र—" मेरी पत्नी ने मुरझाये हुए स्वर में कहा, "तुमने क्या सफेद बोस्की का रूमाल देखा है?"

"जी—वह जो आप मेरे लिए काढ़ रही थीं?" सुरेन्द्र ने बड़ी सादगी से पूछा।

"तुम्हें किसने कहा?" मेरी पत्नी ने आश्चर्य से पूछा।

"जी बस, पता लग गया"। उस शैतान ने भोलेपन से कहा। साथ ही मेरी ओर आंख से संकेत भी कर दिया।

"हूँ—यह बात है"। मेरि पत्नी ने अर्थ पूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा। फिर चुपके से पास ही पड़ी हुई एक कुर्सी पर बैठ गई। मैंने झल्ला कर मुंह दूसरी ओर कर लिया।

एक ही क्षण पश्चात् मेरी पत्नि ने कहा,

"परन्तु वह गया कहां?"

"जी बस जिस का था वह ले गया"। उसने जेब से रूमाल निकाल कर मुख पोंछते हुए कहा, "आप क्यों चिन्ता कर रही हैं?

"अच्छा, अच्छा, मेरी पत्नी ने खिसियानी हंसी हंसते हुए कहा।

"तुम्हें मिल गया, बस मैं यही चाहती थी"।

परन्तु मैं अनुभव कर रहा था कि इस खिसियानी हंसी के पद् में उसकी स्वयं सुरेन्द्र को रूमाल पेश करने की आकांक्षा कराह रही थी और यह सब कुछ चूंकि मेरे ही कारण हुआ था, इस लिए मैं लज्जा में डूबा जाता था। मैंने चुपके से खिसक जाना ही बुद्धिमत्ता समझा और विवाह के पश्चात् आज प्रथम बार अकेले ही खाना खाकर दुकान की ओर चल दिया। ड्योढ़ी से गुजरते हुए मुझे सावित्री मिली। उसने अत्यन्त प्रेम पूर्वक कहा, "भाइया जी! नमस्ते!" परन्तु मैं कुछ इतना दुखी हो रहा था कि मैंने रुखाई से नमस्ते का उत्तर दिया और तेजी से ड्योढ़ी से बाहिर हो गया।

सावित्री मेरी पत्नी के मामा की लड़की थी और पिछले कुछ दिनोंसे मेरी पत्नी घरमें यह यत्न कर रही थी कि किसी प्रकार सावित्री को सुरेन्द्र से टांक दे। सावित्री इस बात को भली भांति जानती थी और सम्भवतः इसी झिझक के कारण पिछले कई दिनों से वह हमारे घर न आई थी।

सावित्री के कमरे में प्रविष्ट होते ही मेरी पत्नी ने कहा,

"क्यों सावित्री, इतने दिनों कहां रही?

"बस, ऐसे ही न आ सकी।—सावित्री ने सादगी से कहा।

"वाह भाभी"—सुरेन्द्र ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "यह तुम्हारी अच्छी बहिन है जो कई२ दिन तुमसे मिलने ही नहीं आती

"सुना सावित्री, क्या कह रहा है सुरेन्द्र?"

"जी"

"अब बताओ, तुम्हें क्या दण्ड दिया जाय?"

"आपके घर आई हूं। आपका जी चाहे दण्ड दें"।

"भाभी!"—सुरेन्द्र ने पुनः बात काटते हुए कहा, "आप चांटे मारने चाहें तो नाक मैं पकड़ूं?

"ऊं हूं!"

"फिर क्या बेचारी से कान पकड़वाओ गी ?"

"मेरा जो जी चाहे करूं। तुम क्यों पीछे पड़ गए हो मेरी बहिन के ?"

"झूठ ! सर्वथा झूठ!! पीछे कहां पड़ा हूं—सामने खड़ा हूं"।

"अच्छा, सामने खड़े हो बाबा"। मेरी पत्नी ने हाथ जोड़ते हुए कहा, "अब या तो चुपके से बैठ जाओ या अपने कमरे में चले जाओ"।

"चला जाऊंगा। पहले तुम सावित्री को एक दो तड़ाड़त लगा तो दो"।

"फिर चले जाओगे ?"

"हूं"

"तो फिर लाओ सोटी"।

"सोटी—" सुरेन्द्र ने कमरे में इधर उधर देखते हुए कहा, "सोटी तो यहां है नहीं—हां ! यह मेरा बाजू है—दो मिनट के लिए इसे ही सोटी मान लो—" कहते २ सुरेन्द्र ने अपना बाजू आगे बढ़ा दिया।

मेरी पत्नी उसकी इस सूझ पर खिलखिला कर हंस पड़ी। परन्तु सावित्री ने शरमा कर सिर झुका लिया। और सुरेन्द्र स्वतः ही एक ओर मुंह करके मुस्कराने लगा। सम्भवतः वह सोच रहा था कि यदि उसकी भाभी एक क्षण के लिए उसकी बात मान कर उसके हाथ ही को सोटी समझ ले तो कम से कम सावित्री के नरम शरीर के स्पर्श का ही आनन्द मिल जाए। काश, ऐसा हो जाए।

उस दिन अचानक बातों ही बातों में बहुत देर हो गई

और सन्ध्या का धुन्धलका चहुं दिशा फैलने लगा। ऐसे में चूंकि सावित्री को अकेले भेजना उचित न था। इसलिए मेरी पत्नि ने यही अच्छा समझा कि सुरेन्द्र को सावित्री के साथ भेज दिया जाए या शायद वह यह चाहती थी कि दोनों एक दूसरे से अलग बात चीत कर लें ताकि उनका झुकाव पता लग जाए।

दूसरे दिन मेरी पत्नी स्वयं सावित्री के घर गई और उस से कुरेद कुरेद कर बातें पूछने लगी। सावित्री पहले तो कुछ हिचकिचाती रही फिर कहने लगी :—

"आपके घर से निकल कर बाहर (सुरेन्द्र) धीरे २ चलने लगे। कितना ही रास्ता चलते गए। न उन्होंने मुझे बुलाया, न मैंने ही कोई बात की। बस, सिर नीचा किए पीछे २ चलती रही। अन्त में तङ्ग आकर मैंने कहा,

"आप बहुत धीरे चलते हैं"।

"जी" उन्होंने मुस्कान भरी दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा, 'यह तो आपके लिए चल रहा हूं। अन्यथा मै तेज चला तो आप पीछे रह जाएंगी"।

"मैं तेज चल सकती हूँ"। मैंने मन्द स्वर से कहा।

"अच्छी बात है"—और वह तेज २ चलने लगे और बहन, मैं क्या जानूं कि वह इतने तेज चलेंगे। मैं तो कुछ ही क्षणों में घबरा गई।

"जी—ई ई—मैंने मंद स्वर से पुकारा और वह मेरा संकेत समझते ही रुक गये और फिर मेरी आंखों में आंखें डाल दीं। मैंने लजा कर आंखें झुका दीं। वह कहने लगे।

"अब मैं बिल्कुल धीरे चलूंगा।

"क्यों?" मैंने धीरे से पूछा।

"घर जो आ गया"। उन्होंने कुछ विचित्र ढंग से कहा।

और मैंने जो दृष्टि उठा कर उनके मुख की ओर देखा तो मेरा हृदय सीने में उछलने लगा। मैं तो यही समझो कि अभी मुझे बाहु से पकड़ कर वक्ष से चिपटा लेंगे। परन्तु नहीं, वह उसी प्रकार धीरे २ चलते गए और फिर घर आगया।

सुरेन्द्र से पूछने का काम मेरे जिम्मे लगा। मैंने सब से पहले यही ढंग समझा कि उससे सावित्री का अनुभव अक्षरशः कह डालूं। वह पहले तो गम्भीरता से सुनता रहा। फिर जब मैं कह चुका तो मुस्कराने लगा। मैंने कारण पूछा तो कहने लगा।

"विचित्र बात है। यह आज कल की लड़कियां न जानें क्यों इतनी सूक्ष्म दर्शी हो आई हैं। मुझे तो केवल इतना याद है कि घर के पास पहुंचते हुए सावित्री का हाथ मेरे हाथ से इस प्रकार छुआ कि मैं समझा वह अपना हाथ मेरे हाथ में देना चाहती है। फिर एक बार चुपके से मैंने उसका हाथ अपने हाथ में ले लिया और जोर से दबा दिया।

(२)

कुछ दिनों से सुरेन्द्र के पिता जी कुछ अस्वस्थ थे परन्तु उनकी दशा कुछ इतनी चिन्ताजनक न थी कि हम समझते कि इस रोग का इतना भयानक अन्त होगा। परन्तु एकाएक एक दिन वह हमें छोड़ गए। घर की तमाम व्यवस्था बिखर गई। कहां तो किसी अच्छे बंगले में जाने का विचार और कहां अब यह सोचा जाने लगा कि इस मकान को छोड़ दिया जाए क्योंकि इसका मासिक किराया चालीस रुपये है। सुरेन्द्र की दशा बड़ी विचित्र थी। चाचा जी की मृत्यु से मेरा यह हाल था कि मैं रोते-रोते बेहाल हुआ जाता था। घर के छोटे बड़े सब कुहराम मचा रहे थे परन्तु वह मौन था। मौन और निश्चल! बस पथराई हुई आंखों से कभी इधर कभी उधर देख लेता था या भूमि पर दृष्टि

जमाए बार २ अपना होंठ काटने लगता था। कितने ही दिनों तक उसने किसी से बात न की। लोग शोक करने के लिये आते। उसने सबकी बात सुनी परन्तु अपनी एक भी न कही। कभी आवश्यकता हुई तो सिर हिला दिया अन्यथा मौन और दृष्टि गाड़ दी। दिन में कई २ बार उठकर अपने पिता जी के कमरे में जाता और जब भी लौटता, उसका मुख पहले से अधिक पीला होता। ऐसे ही दिन बीतते गए और उसकी निश्चलता बढ़ती गई।

उन दिनों में नौशहरा से हमारी मासी जी भी शोक के लिए आई हुई थीं। सुरेन्द्र की निश्चलता उनको भी चिन्ताजनक लगी। उन्होंने सुरेन्द्र की माता जी से कहा कि सुरेन्द्र को कुछ समय के लिए उनके साथ नौशहरा भेज दिया जाए। वैसे भी गर्मियों की छुट्टियां समीप थीं। इस लिए उसकी पढ़ाई में विघ्न पड़ने का भी कोई भय न था। यह प्रस्ताव सब ने पसन्द किया और कुछ दिनों के लिए सुरेन्द्र को उस की मासी के साथ भेज दिया गया। परन्तु यहां भी उसकी निश्चलता वैसी ही बनी रही और हमारी मासी के सभी प्रयत्न विफल होगए। वह कठपुतली की भांति इधर उधर फिरता। जो काम कहा जाता कर देता और इसके आगे बस फलों की पलेट उसके सामने रख कर कहना पड़ता था कि खाओ,तब कहीं वह कोई वस्तु उठा कर मुंह में डालता था। ताश उसके हाथ में दी जाती कि बांटो और वह बांट देता। ग्रामोफोन उसके आगे कुर्सी पर रखा जाता और बार बार बजाने के लिए कहा जाता तब कहीं वह एकाध रेकार्ड बजा देता। ऐसे ही एक दिन पुराने रेकार्डों के एक डिब्बे में उसकी दृष्टि एक रेकार्ड पर पड़ी और आकस्मात उसका हृदय जोर जोर से धड़कने लगा। उसे भूत काल की मनोरंजक घड़ियां आंखों के सामने घूमती दिखाई देने लगीं। उसके साथ ही

सुरजीत का मोहना मुखड़ा उसे अपने मुख पर झुकता दिखाई दिया। उसे ऐसा अनुभव हुआ कि वह फिर वही खलिदंड़ा सुरेन्द्र हो गया है, टमाटरों का भूखा और चाकलेट का दीवाना। उसने रेकार्ड डिब्बे में रख दिया और डिब्बा एक ओर सरका दिया।

"मासी जी"—उसने कुर्सी से उठते हुए कहा, "मैं आज पेशावर जाऊंगा"।

क्यों बेटा क्या इतनी शीघ्र हम से जी भर गया ?"

"जी नहीं, मैं तो ऐसे ही दो एक दिन के लिए घूमने जाता हूं।"

"कब आओगे" ?"

"अधिक से अधिक सोमवार तक।"

(३)

सुरेन्द्र जब पेशावर के स्टेशन पर उतरा तो उसके मन में भावों का एक तूफान था। वह तेज २ पग धरता हुआ गेट पर टिकट देकर बाहिर निकला। ऐसा मालूम होता था कि अब वह सुरजीत से मिलने के लिए एक क्षण का भी विलम्ब नहीं चाहता। उसने कुली से सूटकेस टांगे में रखवाया। तांगे वाले को बंगले का पता दिया और फिर अपने विचारों में उलझ गया। वह सोचने लगा, सुरजीत इस समय किस दशा में होगी, सम्भवतः वह नहा धोकर बरामदे में बैठी बाल सुखा रही होगी या शायद वह बड़े शीशे के सामने खड़ी अपनी लम्बी २ अल्कों को बल देकर माथे के ऊपर एक आकर्षक उभार के रूप में सजा रही होगी। उफ ! वह अपूर्ण उभार जो एक अपूर्ण चुम्बन की भांति उसके बालों पर नृत्य करके रह जाता था। उसने सोचा कि वह आज इस अपूर्ण चुम्बन को पूर्ण करके छोड़ेगा, उसके बालों की उभरी हुई उलझनों को सुलझाकर रख देगा। वह मुझे

देख कर कितनी प्रसन्न होगी। मुझे खैंच कर अपने सीने से लगा लेगी। उफ, वह नरम सीना ! एकाएकी उसे अपने सीने में एक तनाव अनुभव हुआ। उसने ज़ोर से श्वास एकदम अन्दर खैंचा। उसे अपना शरीर फैलता हुआ अनुभव हुआ। उसने विचार किया कि आज मैं सुरजीत के मन और मस्तिष्क पर छा जाऊंगा, उसके अंग २ पर फैल जाऊंगा। और उसे अपने चौड़े सीने में समा लूंगा। कभी वह मुझे उर्मिला से छुपाने का यत्न करती थी, आज मैं उसे समस्त संसार से छुपा लूंगा उर्मिला ! और उसे अपने हृदय के कोने में एक सुहावनी चुभन का अनुभव हुआ। यह चुभन फैलते २ उसके सारे शरीर में फैल गई। दूसरे ही क्षण वह साक्षात तड़प उठा। उसने कलपना में देखा कि अपने फाटक के पास उर्मिला उसे पुकार २ कर कह रही है आओ सुरेन्द्र घर २ खेलें। 'आओ—आओ—आओ !!! " "बाबू जी ! तहसीलदार साहब का बंगला आ गया" कोचवान ने कहा और सुरेन्द्र उस स्वप्न से चौंक पड़ा। उसने शीघ्रता से कोचवान को किराया दिया। सूटकेस उतारा और तहसील दार साहिब के बंगला की ओर जाने के बजाए उर्मिला के बंगले की ओर बढ़ा। परन्तु गेट पर ही ठिठक कर रह गया। गेट के एक ओर बोर्ड लटक रहा था।

वी० के० कपिला

एस० डी० ओ०

उसे अपना हृदय सीने में डूबता हुआ महसूस हुआ। सूटकेस उसके हाथ से छूट कर भूमि पर आ रहा।

बाबू जी ! तहसीलदार साहिब का बंगला तो इस ओर है । इस बंगले में तो नहर वाले साहिब रहते हैं ।

"ओह् ! अच्छा ! अच्छा !! सरेन्द्र ने सम्भलते हुए कहा, पलट कर देखा तो कोचवान ताँगे को मोड़ कर वापिस लौट रहा था । उसने सूटकेस उठाया और अपनी परेशानी को छुपाते हुए तेज २ पग धरता हुआ सुरजीत के बंगले में चला गया । द्वार पर ही उसे माली मिल गया

"हरिया —ओ हरिया—" सुरेन्द्र ने पुकारा ।

कौन ? बाबू जी, छोटे बाबू जी, आप ! —" माली ने घबराते हुए कहा फिर सूटकेस सुरेन्द्र के हाथ से लेकर उसे ड्राइंग रूम में ले गया और स्वयं सरदार साहब को बुलाने के लिए चला गया । एकबार फिर सुरेन्द्र अपने ही विचारों में सलग्न हो गया । वह सोचने लगा कि देखें सब से पहले मुझसे कौन मिलने आता है. । सम्भव तः सुरजीत और न जाने सब इकट्ठे ही आ जाएं । काश कि सुरजीत अकेली आए । उसने कल्पना में देखा कि सुरजीत एक विकल आकांक्षा की भांति द्वार का चौपट खोल कर भागती हुई आकर उससे लिपट गई है ।

एकाएक द्वार खुला और सुरजीत की माँ और सरदार साहब कमरे में प्रविष्ट हुए । सुरेन्द्र की निराशा ने देखा कि सुरजीत उनके साथ नहीं ।

"अरे सुरेन्द्र सुरजीत की माँ ने कहा "कब आए बेटा ?
"नमस्ते चाची जी ! नमस्ते चाचा जी " सुरेन्द्र ने कुर्सी से उठते हुए और हाथ जोड़ते हुए कहा "अभी आ ही रहा हूं "। "जीते रहो बेटा" सुरजीत की माँ ने हाथ से बैठने

का संकेत करते हुए कहा, "कैसे आना हुआ" और फिर स्वयं भी एक कुर्सी पर बैठ गई। पास ही एक कौच पर सरदार साहब भी बैठ गए। "जी बस आ ही गया" सुरेन्द्र ने दृष्टि नीचे किए हुए उत्तर दिया, "वैसे तो नौशहरा तक आया था। जी चाहा आप के दर्शन करता जाऊं। बस फिर न रुक सका।

"कितना अच्छा है सुरेन्द्र बेटा"। सुरजीत की माँ ने सरदार साहब को ओर आंखें मोड़ते हुए कहा, "ऐसे हो तो नहीं हमारी सुरजीत हमेशा सुरेन्द्र सुरेन्द्र रटा करती थी"। कहते २ सुरजीत की मां की आँखों में आंसू आ गए।

"आप उदास क्यों हो गईं, चाची जी ?" सुरजीत ने परेशान होते हुए पूछा।

"ऐसे ही बेटा !" सुरजीत की मां ने आंखें पोंछते हुए कहा।

"सुरजीत की याद आ गई थी।"

"सुरजीत सुखी तो है ?" सुरेन्द्र ने बेचैन होकर पूछा।

"बेटा, वह तो दो सप्ताह हुए हमें भंवर में छोड़ कर चल दी" कहते २ सुरजीत की मां की आंखें उमड़ आई और वह आंचल से मुख ढांप कर अश्रु बहाने लगी।

सुरेन्द्र को ऐसा अनुभव हुआ जैसे किसी ने पैना नोकीला छुरा उसके सीने में घोंप दिया हो। उसने तिलमिला कर सुरजीत की माता की ओर देखा और फिर घबरा कर आंखें बंद कर लीं। कुछ क्षण के लिए उसे अपना सिर घूमता हुआ लगा। फिर उसे लगा कि चारों ओर अंधेरा फैल रहा है। एकाएक इसमें सुरजीत का मुख उमड़ती हुई आशा की भांति प्रकट

हुआ। सुरेन्द्र ने देखा कि सुरजीत आकांक्षापूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देख रही है। उसके होठ कुछ कहना चाहते हैं परन्तु उनसे भाषण शक्ति छीन ली गई है। उसकी आंखें कुछ संदेश देना चाहती हैं परन्तु उनमें हिलने की शक्ति शेष नहीं और इस विवशता ने उसकी धमनियों में तड़प भर रखी है। सुरेन्द्र को ऐसा लगा कि उसका हृदय सीने में डूब रहा है। इसके साथ ही उसकी आंखें भर आईं। दूसरे ही क्षण जब उसने सुरजीत की मां से शोक प्रकट करने के लिए मुख खोला तो उसे अपना गला रुंधा हुआ अनुभव होने लगा। उसने भर्राई हुई आवाज़ में कहा—

"चाची जी! यह तो आप ने अत्यन्त अशुभ समाचार सुनाया।" और कुछ और कहने से पूर्व उसकी आंखों से टप २ आंसू गिरने लगे। उसने सिर को कुर्सी की पीठ की ओर डाल दिया और डबडबाई आंखें छत पर गाड़ दीं। कुछ क्षण के लिए कमरे में मृत्यु का सा मौन रहा। सुरजीत की मां निरन्तर आंसू बहाती रही। सरदार साहिब यथा पूर्व चुप चाप बैठे रहे और सुरेन्द्र डबडबाई हुई आंखों से छत की कड़ियां गिनने का असफल प्रयत्न करता रहा। अंत में इस मौन को सरदार साहिब ने तोड़ा। उन्होंने अपने भारी स्वर में कहा, "सुरेन्द्र के लिए चाय तो मंगवाई होती।"

"ओह" सुरजीत की मां ने आंसू पोंछते हुए कहा, "सुरजीत की बातों में चाय का भी ध्यान न रहा।" कहते २ वह द्वार की ओर बढ़ी।

"न जाइये, चाची जी!" सुरेन्द्र ने रोकते हुए कहा, "मुझ से अब चाय न पी जाएगी।"

"ऐसा भी कहीं हो सकता है।" सुरजीत की मां ने स्नेह

पूर्ण दृष्टि से सुरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा, "हमने खाना पीना क्या छोड़ दिया है, जो तुम चाय न पियोगे ?" और धीरे २ पग धरती हुई कमरे से निकल गई।

सुरजीत की मां के चले जाने के पश्चात एक बार फिर कमरे में भयानक मौन छा गया। सरदार साहिब स्वभावतः चुप रहने वाले थे। सुरेन्द्र का कुछ बोलने को मन न करता था। उसका मन दुख के एक असह्य बोझ के नीचे दबा जा रहा था। सुरजीत की याद रह २ कर उसके दिल में चुटकियां ले रही थी। उसने आंखें बन्द कर लीं और कल्पना के संसार में खो गया। एकाएकी उसे ऐसा लगा कि सुरजीत उसके पास बैठी उसे सेब छील २ कर खिला रही है। उसने हल्के बादामी रंग की सुनहरे बार्डर वाली साड़ी पहनी हुई है और हस हंस कर उससे बातें कर रही है। एकाएक एक चंचल मुस्कान उसके मुख पर खिल उठती है। वह उसकी आंखों में आंखें डाल कर प्रेम पूर्ण स्वर में उससे कहती है।

"कहो सुरजीत"

और वह कहता है "शुरजीत"

"कहो सिंह"

"शिंह"

"सोना"

"शोना"

और अभी वह अच्छी प्रकार सोना कह भी नहीं चुकता कि वह तुरन्त बाहु से पकड़ कर उसे अपने सीने से लिपटा लेती है और उसके गालों और अधरों पर अगणित चुम्बन दे डालती है। आह सुरजीत ! इसका वह प्यार से मुंह बना कर कहना

"बश"—और उसका जी चाहा कि क्या वह उसे पुनः उसी ढंग से एक बार, केवल एक बार 'बश' कह सके। सहसा उसे अपने पास एक सरसराहट सी अनुभव हुई। उसे ऐसा भान हुआ मानो सुरजीत किसी चमत्कार द्वारा परलोक से खिंच कर उसके पहलू में आ गई है। उसने तुरन्त आंखें खोल दीं। परन्तु सुरजीत के स्थान पर नौकर को तिपाई पर चाय का सामान रखते देखकर कटकटा गया। अपनी कल्पना की यह दुर्दशा उसे बड़ी कठोर लगी। उसने एक गहरा लम्बा श्वास भरा और एक दर्द पूर्ण दृष्टि कौच के खाली स्थान पर डाली। आह! यह वही कौच था जिस पर बैठ कर सुरजीत उसे सेब और आड़ू छील २ कर खिलाती थी। और आज यह तपती हुई चाय जिसे सम्भवतः यह उसकी ध्वंस आकांक्षाओं का धुआं था जो केटली से उभर उभर कर वातावरण को अशुद्ध कर रहा था। उसने थाली में चाय उंडेलते हुए सोचा कि इस पिघले हुए भाव को सीने में उंडेल लेना ही अच्छा है। जलती हुई आशाओं को जला कर राख कर देना ही अच्छा है ताकि इनमें जीवन का चिन्ह मात्र भी न रहे।

"क्या सोच रहे हो बेटा? सुरजीत की मां ने अन्दर आते हुए कहा। "सोचना क्या है, चाची जी। मुझे तो बिश्वास नहीं होता कि सुरजीत हमसे सदा के लिए बिछुड़ गई।"

हमारे भाग (भाग्य) ही खोटे (बुरा) थे अन्यथा यह कोई उसके मरने का समय था?

पर एकाएकी क्या हो गया उसे ?

"बस मौत आ गई बेटा। अभी उसका विवाह किए पूरे दो मास भी तो न हुए थे। उसकेकर्मों (भाग्य) में शायद

ससुराल जाना बदा न था । दो दिन बुखार हुआ और मेरी फूल सी सुरजीत मुरझा कर रह गई"।

"बस केवल दो दिन बुखार हुआ ?

"हां बेटा सुरजीत की मां ने उमड़ते हुए आंसू आंचल से पोंछते हुए कहा, वैसे तो जबसे विवाह हुआ था कुछ निराश सी रहती थी । ऐसे प्रतीत होता था जैसे उसका कुछ खो गया हो । मरने से दो दिन पहले बाजा बजाना चाहा । मैं प्रसन्न हुई कि सम्भवतः इसी प्रकार इसका मन बहले। बड़े शौक से बाजे की चाबी दी । सुई लगाई और रेकार्ड साफ करके लगाना ही चाहती थी कि रेकार्ड लगाए परन्तु वह छूट गया और गिरते ही दो टुकड़े हो गया। बस, फिर क्या था। बाजा बन्द करके एक ओर धकेल दिया । और स्वयं फूट फूट कर रोने लगी। मैंने कहा, 'पगली हुई है, सुरजीत ! क्या हुआ जो एक रेकार्ड टूट गया ?, कहने लगी, 'मां जी, आप क्या जाने मुझे यह रेकार्ड कितना प्यारा था।' बस, दूसरे दिन बुखार हो गया और अगले दिन चल भी बसी । आह ! सुरजीत ! तेरी मौत मुझे क्यों न आई ? कहते २ सुरजीत की मां आंचल से मुंख ढांप कर चुप चाप आंसू बहाने लगी।

"संतोष कीजिए, चाची जी ।" सुरेन्द्र ने व्यावहारिकता से काम लिया । वास्तविकता यह थी कि स्वयं उसका गला भर आया था और वह चाहता कि अकेले में बैठ कर खूब जी भर रोये । चाय की प्याली से अभी कुछ घूंट ही लिए थे परन्तु अब उसका जी उसको देखना तक न चाहता था। उसने नौकर को सामान उठा ले जाने को कहा और स्वयं

हथेली पर ठोड़ी रख कर उकताया सा बैठ गया।

"तुमने कोई चीज छुई तक नहीं, बेटा?" सुरजीत की मां ने आँसू पोंछते हुए कहा, "कुछ पेस्ट्री तो खाई होती?"

"बस चाची जी! मुझसे अब कुछ न खाया जाएगा। मैं ने पेस्ट्री खाई तो सुरजीत की आत्मा कभी मुझे क्षमा न करेगी"।

"तुम जानो बेटा!" सुरजीत की माँ ने दीर्घ स्वास भरते हुए कहा, "कुछ खा लेते तो अच्छा ही था"।

"अब रावलपिण्डी ही पहुँच कर कुछ खाऊंगा।" सुरेन्द्र ने शोकाकुल स्वर में कहा, "मैं आज सायं चला जाऊंगा चाची जी!"

"न बेटा!" सरदार साहिब ने प्रथम बार वार्तालाप में भाग लेते हुए कहा, "अब यहाँ आए हो तो कुछ दिन तुम्हें रहना ही पड़ेगा। और कुछ नहीं तो तुम्हारी चाची का दिल ही तुम्हें देख कर बहलेगा"।

"आप की आज्ञा तो मैं टाल न सकूंगा। परन्तु यहां तो मेरा दुःख से बुरा हाल हो जाएगा।"

"फिर भी दो एक दिन तो तुम्हें यहां रहना ही चाहिए।" सुरजीत की मां ने हस्तक्षेप करते हुए कहा, "सुरजीत होती तो वह तुम्हें कई सप्ताह तक न जाने देती।"

"आप कहते हैं तो आज का दिन रह जाता हूँ। परन्तु कल मुझे न रोकिएगा, चाची जी!"

"कल आने पर कल की बात देखी जायगी। आज तो तुम अपने लिए सुरजीत का कमरा ठीक कर लो।"

(४)

सुरजीत के कमरे में प्रविष्ट होते ही सुरेन्द्र ठिठका। उसे ऐसा लगा जैसे सुरजीत मुस्कराती हुई उसके स्वागत के लिए बढ़ रही है। उसका हृदय जोर से धड़कने लगा उसके दोनों हाथ स्वतः ही सुरजीत की ओर फैल गए और उसके मुंह से एक मद्धम सी चीख़ निकली।

सुर—————————सुरजीत——————और उसके पाँव अपने आप उस ओर बढ़ने लगे जिस ओर से सुरजीत आ रही थी परन्तु दूसरे ही क्षण उसका उत्साह ठण्डा हो गया। उसके पांव ढीले पड़ गए। उसका सिर चकराने लगा और माथे को दोनों हाथों से थाम कर कमरे के बीचों बीच कालीन पर बैठ गया। सुरजीत जिसे उसने अपनी ओर बढ़ते देखा था निश्चल व निःशब्द खड़ी थी। उसका दायाँ पांव आगे बढ़ा हुआ था। उसके मुख पर वही मोहक मुस्कान खेल रही थी जो आज तक निर्जन रातों की विकलता में उसके लिए पथ दर्शक बनती चली आई थी। आह! वह आँखें जो सदा उसके होठों के साथ मुस्कराया करती थीं, आज निश्चल थीं! यह सुरजीत न हो सकती थी। यह सुरजीत न थी। यह तो उसका धुंधला सा चित्र मात्र था।

द्वार के साथ सुरजीत की एक पूरे कद की तस्वीर रखी थी जिस का प्रतिबिम्ब सामने के शीशे में पड़ रहा था कि नवागन्तुक व्यक्ति एक क्षण के लिए यही समझता था कि सुरजीत पग बढ़ाए उस की ओर बढ़ रही है।

सुरेन्द्र उठा और सुरजीत के चित्र के समीप खड़ा हो कर उस की ओर टिकटिकी बांध कर देखने लगा। उसका मस्तिष्क एक

मानसिक संताप से खौल रहा था। वह अनुभव कर रहा था कि चित्र में सुरजीत का मुस्कराता हुआ मुख उसकी विवशता पर हंस रहा है। वह जो कभी सुरेन्द्र के लिये विकल रहती थी अब उसकी व्याकुलता पर मुस्करा रही है। उसे ऐसा लगा जैसे उसके मुस्कराते हुए होंठ कह रहे हों देखो सुरेन्द्र! कभी तुम मेरे मस्त प्रेम का उत्तर देते हुए झिझकते थे परन्तु आज तुम मेरी चौखट चूमने के लिए उपस्थित हुए हो और मैं तुम्हारी वेदना स्वीकार करने से इन्कार कर रही हूं। कभी मैं अपनी आकांक्षाओं को मन ही मन में दबा देती थी या बल पूर्वक अपने अरमानों की प्यास बुझाने के लिए तुम्हें अपने पहलू में खेंच लेती थी परन्तु आज तुम्हारी सभी आशायें इस निर्दयता से कुचली जा रही हैं कि कोई पूछने वाला नहीं! तुम सुरेन्द्र—तुम जो असीम लापरवाह थे, आत्माभिमानी थे, आत्म सेवी थे और प्रेम के नाम से अपरिचित थे। आज क्या तुम वही सुरेन्द्र हो बोलो! बोलो!!—आज तुम्हें यह क्या हो रहा है? आज क्यों तुम्हारे हृदय से रक्ताश्रु बह रहे हैं? आज क्यों तुम गिड़-गिड़ा कर मेरे आगे हाथ फैला रहे हो? जाओ मैं तुम्हारी पहुँच से वाहिर हूँ। तुम जीते जी मुझ तक नहीं पहुँच सकते

जाओ!——————जाओ!!——————जाओ!!!

हा, हा हा!——— हा, हा, हा!!——— हा, हा, हा!!!

और उसे ऐसा लगा कि सुरजीत की खिलखिलाहट एक फटकार की भांति उसके मुख पर बरस रही है। उसने तिल-मिला कर उससे मुंह दूसरी ओर फेर लिया और भागता हुआ पलंग पर गिर कर फूट फूट कर रोने लगा।

धीरे २ सिसकियाँ मौन निश्वासों में परिणत होने लगीं

और फिर अश्रुओं की दो उमड़ती हुई धारायें तकिये में समाने लगीं।

वह भी उसी प्रकार अश्रुओं के निरंतर बहाव में अपनी आशाओं को बहाये जा रहा था कि नौकर ने प्रवेश करते हुये कहा, बाबू जी ? तहसील दार साहिब पूछते हैं, आप खाना डाईनिंगरूम में खायेंगे या यहीं भेज दिया जाए?

सुरेन्द्र ने पलकों पर काँपते हुए आंसू तकिये से पोंछ डाले और नौकर की ओर देखे बिना कहा

मैं खाना कुछ देर के पश्चात् खाऊंगा।

नौकर चला गया और साथ ही सुरेन्द्र के अश्रुओंका बहाव भी लेता गया। सुरेन्द्र को आश्चर्य था कि उसके आँसू रुक कैसे गए। वह उबलते हुए स्रोत जिन के रुकने का कोई प्रत्येक्ष कारण दिखाई न देता था, अकस्मात रुक कैसे गए। वह तेज तूफान जो उसके हृदय को बहाये लिए जा रहा था एकाएक थम कैसे गया ? क्या नौकर का आगमन ही उसे भावना के संसार से भौतिक संसार में लाने के लिए पर्याप्त था ? या फिर यह खाना ? और वह चकित था कि इस प्राण शोषक वातावरण में खाने का ज़िक्र ही कैसे आया ? भला सुरजीत की याद का खाने से क्या सम्बन्ध ? यह नौकर क्यों आया ? और यदि आया था तो उस का खाने के लिए कहना क्या आवश्यक था ? उसे विस्मय था कि इस घर के लोग इस दुखदाई घटना के पश्चात् भी खाने के विषय में कैसे सोच सकते हैं ? और उस ने फटी सी दृष्टि अपने आस पास डाली। उसे कमरे के निर्दयी मौन में अपना अस्तित्व विचित्र और बेमाना लगा। सहसा उस पर एक विह्वलता छाने लगी। उसने सोचा कि यदि वह सुरजीत के

कमरे में यूं ही कुछ समय अकेला रहा तो निश्चत तौर पर वह भावनाओं के दबाव से बड़बड़ाने लगेगा। वह घबरा कर पलंग से उठा और ड्रेसिंग टेबिल के सामने खड़ा हो गया। शीशे में अपना प्रतिबिम्ब देख कर उसे कुछ ढाढ़स सी अनुभव हुई। उसने गहरा लम्बा साँस लिया और दृष्टि शीशे पर से हटा ली। पास ही तिपाई पर वह पूराना ग्रामोफोन रखा था और उसके ऊपर रकार्डों का डिब्बा। एकाएक उसे अपना दिल ज़ोर २ से धड़कता महसूस हुआ। उसकी अंगुलियाँ किसी आकर्षण से खिचती हुईं रेकार्डों के डिब्बे तक पहुँच गईं। उसने तुरंत ढकना उलट दिया। परन्तु रेकार्डों को देखते ही उसका सिर जोर से चकराया और उसकी आँखों के सामने अन्धेरा छने लगा।

रेकार्डों के डिब्बे में सब से ऊपर वही रेकार्ड टूटा हुआ पड़ा था

पांचवां परिच्छेद

सुरेन्द्र की अनुपस्थिति में हमने मकान बदल लिया। एक दिन नौशहरा से पत्र आया कि सुरेन्द्र सैर के लिए कुछ दिनों के लिए पेशावर चला गया है। अभी मैं यह पत्र घर में सुना ही रहा था कि किसी की पगध्वनि सुनाई दी। मैं ने पलट कर देखा तो सुरेन्द्र को धीरे २ कमरे में प्रविष्ट होते पाया।

"सुरेन्द्र तुम! "मैं ने आश्चर्य से कहा, "तुम कैसे आगए?"

"जी बस, घर पूछते पूछते आ गए।" सुरेन्द्र ने चुपके से एक ओर सूटकेस रखते हुए कहा।

"न, न, मेरा आशय यह नहीं।" मैं ने संभलते हुए कहा 'नौशहरा से यह पत्र आया है कि तुम पेशावर चले गए हो।"

"जी—और पेशावर से ही मैं सीधा यहां आ रहा हूं, बस। "सुरेन्द्र ने कुछ इस ढग से कहा कि मैं ने घबरा कर पुनः उसके मुख की ओर देखा। उन कुछ दिनों में उसका मुख और भी उदास और निढाल हो गया था और उसकी आंखें इतनी तेजी से रंग बदल रही थीं कि ऐसा प्रतीत होता था कि उसके सीने से निरंतर दुख की घटाएं उठ रही हैं जिनके कारण बार बार उसकी आंखों में अन्धेरा छा जाता है। इस लिए बात टालने की दृष्टि से मैं ने कहा,

"आओ सुरेन्द्र, तुम्हें तुम्हारा कमरा दिखा दूं।"

सुरेन्द्र का कमरा गली की ओर था जिसे साधारणतया

बैठक कहते हैं। यह वास्तव में ड्राइंग रूम भी था और सुरेन्दर का कमरा भी। इन दोनों दृष्टियों से फर्नीचर रखने के कारण खिचड़ी सा बन गया था। सुरेन्द्र ने अनमने से हो कर कमरे को देखा और कुछ कहे बिना उसी प्रकार सूट पहने पलंग पर लेट गया। मैं ने भी इस समय उसे कुछ कहना उचित न समझा औह कुछ कहे बिना ही दुकान पर चला गया परन्तु हृदय में चिन्तित था कि देखें सुरेन्द्र की निराशा क्या रंग लाती है।

दोपहर को मैं खाना खाने घर आया तो मैं आश्चर्य चकित रह गया जब मैं ने सुरेन्द्र को उसके कमरे में खिड़की के समीप मुस्कराते देखा। मैं ने उसकी मुस्कान में बाधक होना उचित न समझा और दबे पांव चलता हुआ उसके समीप पहुँच गया। मैं अपना हाथ उसके कंधे पर रखने ही वाला था कि मेरी दृष्टि उसकी आंखों की सीध में पड़ी। सामने मकान की खिड़की में एक भोला सा मन-मोहक मुखड़ा मुस्करा रहा था।

उस लावण्यमयी सुन्दरी ने सम्भवतः मुझे देख लिया क्यों कि खिड़की खट से बंद हो गई। उसी क्षण सुरेन्द्र नें पलट कर मेरी ओर देखा और मुझे खड़ा देख कर ठिठक कर रह गया। मैंने उसे अधिक घबराहट का अवसर न दिया और कहा

"आओ सुरेन्द्र खाना खा लें।

"जी मैं तो खा चुका।" उसने अपने पुराने ढंग से उत्तर दिया और मेज़ से एक पुस्तक उठाकर देखने लगा।

सामने मकान में किरियाना के एक दुकानदार रहते थे। उनकी दो लड़कियाँ थीं। एक तो विवाहिता थी और सुसराल में थी। दूसरी शकुन्तला जिसे उपनाम के तौर पर 'कुन्ती, कुन्ती' कहकर पुकारते थे, अभीअविवाहिता थी। यद्यपि वह निर्धन घर

में जन्मी थी परन्तु अत्यन्त चतुर और बुद्धिमती थी। इस पर ईश्वर ने रूप इतना दिया था कि देखने से सन्तोष न होता था। परन्तु यहां तो शिकारी स्वयं शिकार हो रहा था। सुरेन्द्र को एक बार देखने के पश्चात् वह देखती की देखती रह गई और न जाने कब तक देखती रहती यदि मैं बाधक न हो गया होता।

दुकान को लौटते हुए फिर मैंने सुरेन्द्र को खिड़की के पास खड़े मुस्कराते पाया। ऐसी मोहनी मुस्कान जिसे देखने के लिए आँखें तरस गई थीं। और यद्यपि मैं इस बात के पक्ष में न था कि सुरेन्द्र स्थान २ पर आँखें लड़ाता फिरे या सम्भवतः उसकी यह अपूर्व सर्व प्रियता मुझे खटकती थी, तो भी मैं संतुष्ट था कि उस भय से जो सुरेन्द्र की निश्चलता के कारण घर भर को परेशान कर रहा था, छुटकारा मिला। इसलिए मैं भी मुस्कराता हुआ दुकान की ओर चल दिया।

कुछ दिन बीत गए और यह देखा देखी का सिलसिला दिन प्रतिदिन बढ़ता ही गया परन्तु इसके समय में परिवर्तन हो गया। गर्मी की छुट्टियां समाप्त हो गई थीं और सुरेन्द्र ने कालेज जाना प्रारम्भ कर दिया था। इसलिए दिन को यह सिलसिला जारी रखना कठिन हो गया था या उन्होंने स्वयं ही दिन का समय इसके लिए उचित न समझा। परन्तु संध्या होते ही सुरेन्द्र शीघ्रता से खाना खाता और पढ़ने का बहाना करके बैठक पहुँच जाता। फिर किसकी हिम्मत थी कि बैठक में पाँव रखे क्योंकि सभी जानते थे सुरेन्द्र की पढ़ाई में हस्तक्षेप करना जाते २ आपत्ति खरीदना है! और यह बात केवल मैं ही जानता था कि वह केवल प्रेम की पाठशाला में आँखें लड़ाने की शिक्षा

पा रहा है। इधर खिड़की के समीप तिपाई पर टेबिल लैंप रखकर सुरेन्द्र पुस्तक सामने रखे दृष्टि कुन्ती के मुख पर जमा देता, इधर शकुन्तला हरिकेन के प्रकाश में चादर मेज़पोश अथवा रूमाल काढ़ती हुई बार २ सिर उठाती और सुरेन्द्र की दृष्टि से दृष्टि मिलाकर मुस्करा देती और सिर झुका लेती।
और यह सिलसिला बारह बारह, एक एक, बजे तक जारी रहता यहां तक कि कुन्ती की माँ बार २ छत से आवाजें देकर उसे आ जाने पर विवश कर देती और सुरेन्द्र बिजली का पंखा पलंग की ओर करके वहीं बैठक में सो जाता———

शकुन्तला के एक मंजिल के मकान के साथ एक दो मंज़िला मकान था जिसमें दूर के एक सम्बन्ध से यदि इसे सम्बन्ध रहना चाहिए तो सुरेन्द्र की एक फूफी रहा करती थी। फूफी इस लिए कि वह सुरेन्द्र के पिता जी के जीवन काल में उनको भाई साहिब कहा करती थी। खैर, यह फूफी चाहे कोई भी थी, उसकी एक युवा लड़की थी—शांती—रंग रूप अच्छा था परन्तु ऐसा नहीं कि मनुष्य देख कर धड़क उठे। यह शांती शकुन्तला की सहेली थी और दिन में प्रायः दोनों सहेलियाँ एक साथ बैठ कर कसीदा आदि काढ़ती थीं और अब गत कई दिनों से शकुन्तला ने शांति के घर आना जाना प्रारम्भ कर दिया था।

शांति हमारे घर में प्रायः आया जाया करती थी और हमारा भी उनके घर आना जाना बहुत था। अतः शकुन्तला का यह सोचना कि इसके द्वारा वह शीघ्र अपने प्रियतम तक पहुंच सकेगी अनुचित न था क्योंकि शीघ्र ही उनको समीप आने के अवसर मिलने लगे।

कुछ दिनों से सुरेन्द्र एक जमनास्टिक क्लब में शामिल हो गया था और उसके स्वाभाविक झुकाव ने शीघ्र ही उसे इन खेलों में निपुण बना दिया । क्लब का एक सार्वजनिक प्रदर्शन हुआ और इसमें सुरेन्द्र ने झूले पर काम किया। इस पर उसे मैडल मिले और लोगों ने खूब तालियाँ पीटीं।

इससे दूसरे दिन की बात है कि सुरेन्द्र किसी काम से शान्ति के घर गया। चोबारे में उसने शकुन्तला और शान्ति को फूल काढ़ते देखा। वह अपना काम तो भूल गया और मुस्कराता हुआ शान्ति के समीप आकर बैठ गया ।

"कुर्सी पर बैठिए न।" शान्ति ने सुरेन्द्र को सूट के साथ दरी पर बैठते देख कर कहा।" "ऐसे दरी पर बैठे आप अच्छे नहीं दिखाई देते।"

"नहीं, हमतो तुम्हारे पास ही बैठेंगे"। सुरेन्द्र ने अपनी विशिष्ट मुस्कान के साथ कहा।

"यह पतलून आप को बैठने देगी ?"

"पूछ लेता हूं पतलून से।" सुरेन्द्र ने उसी ढग से उत्तर दिया क्यों री पतलून ! मुझे बैठने देगी अथवा नहीं ?" और कुछ ठहर कर "जी सुना आप ने क्या कहती है पतलून ?"

"नहीं तो।"

"जी पतलून कहती है कि मुझे आप के यहाँ बैठने पर कोई आपत्ति नहीं यदि श्रीमती शान्ति देवी जी आप को यहाँ बैठने दें।"

इस पर शकुन्तला आँखें नीची करके खूब मुस्कराई और शान्ति ने खिसियानी हंसी हंसते हुए कहा; "मैं आप को

रोकती हूं ? यह और लो।" आगे ही जो आपने दिया है वही क्या कम है ? अब और क्या लूं ?"

"आपने मुझसे कब कुछ मांगा है जो मैंने इन्कार कियाहै ?"

"तो अब माँग लूं ?"

"सहर्ष !"

"तो यह चादर काढ़ कर मुझे दे देना।"

"शान्ति एक क्षण के लिए कुछ झिझकी तो शकुन्तला ने चादर के नीचे से शान्ति के पांव को अपने पांव की अंगुलियों से जोर से दबा दिया। उसने प्रश्न सूचक दृष्टि शकुन्तला पर डाली। शकुन्तला ने पलकें हिला कर कुछ संकेत किया और शान्ति ने मुस्कराते हुए कहा,

"यह चादर आप की हो गई।"

"आज तो कुछ और भी मांग लेता तो मिल जाता।" कहते २ सुरेन्द्र ने एक स्पष्ट दृष्टि शकुन्तला पर डाली। शकुन्तला ने झेंप कर नेत्र और भो झुका लिए और शान्ति ने यथा पूव मुस्कराते हुए कहा,

"और क्या माँगोगे ?"

"आज तो और कुछ नहीं मांगूंगा।" सुरेन्द्र ने उठते हुए कहा।" अन्यथा तुम समझोगी लोभी है।"

"कहां चले अब बैठो न।"

"जरा क्लब जाना है"।

"उलटा लटकने ?"

"भाग्य ही ऐसा है।"

"चिमगादड़ हो क्या।"

"नहीं उल्लू।"

"वह क्यों ?"

"तुम्हें जो मुंह लगा रक्खा है"।

और शान्ति की सब चंचलता क्षण भर में उड़ गई। उसे अपने होंठ सूखते हुए अनुभव हुए और उसने झेंप कर आँखें झुका लीं। सुरेन्द्र चलते २ रुक गया। अपने शब्दों की कटुता उसे स्वयं ही बुरी लगी। उसने कुर्सी खेंच कर उस पर बैठते हुए कहा।

"लीजिए आन बैठा हूं।"

"भूमि पर बैठे २ उकता गए हो न।" शान्ति ने निराशा से कहा। परन्तु जब सुरेन्द्र से इसका कोई उत्तर न मिला और शकुन्तला के मुख पर मुस्कान फैलती गई तो शान्ति को अपना खिसियानापन मिटता हुआ दिखाई देने लगा। एक बार फिर चंचल मुस्कान उसके होठों पर खिल उठी। उसने मुस्क-राते हुए पूछा—

"अब तुम्हारे क्लब का खेल कब होगा ?"

"क्यों, कल खेल पसन्द आया ?"

"जी"

"कौन सा ?"

"सब ही तो अच्छे थे।"

"शान्ति !"—शकुन्तला ने झिझकते हुए कहा, "मैं बताऊँ मुझे कौन सा खेल पसंद आया।"

"बताओ।"

"मुझे तो झूले का खेल सब से अधिक अच्छा लगा।"

"अच्छा !"—और शान्ति ने एक पैनी दृष्टि शकुन्तला के मुख पर डाली और फिर सुरेन्द्र के मुख पर। उसने देखा कि

जो मुस्कान शकुन्तला के होठों पर खिलना शुरू हुई थी वह सुरेन्द्र के मुख पर फैलती जा रही है। सम्भवतः आंखों की विद्युत शक्ति ने उसे एक मुख से दूसरे मुख पर भेज दिया था। वह भली भांति जानती थी कि शकुन्तला की मौन मुस्कान सुरेन्द्र की खिलती हुई हंसी से क्या कहना चाहती है। उसने कुछ कटु स्वर में कहा—

"इस उल्लू की प्रशंसा कर रही हो? झूले का खेल तो इसने किया था।"

"अच्छा!"—और सकुन्तला ने अपने प्रियतम की ओर ऐसी प्रिय दृष्टि से देखा कि शांति और भी सटपटा गई और अपनी सहेली के दुस्साहस को मन ही मन कोसने लगी। देखो तो कैसी भोली बनती है जैसे इसे ज्ञात ही न था कि झूले पर सुरेन्द्र ने काम किया है। ऊंह! और उसने चादर काढ़ने में तेजी से हाथ चलाया तो सुई उसके बाएं हाथ में चुभ गई। सी—सी—ई—ई—ई—वह पीड़ा से चिल्लाई और चादर एक ओर फेंक दी।

सुरेन्द्र शकुन्तला के शब्दों में एक विलक्षण मोद अनुभव कर रहा था। उसे अपने मन में एक गुदगुदी सी अनुभव हो रही थी। परन्तु यह गुदगुदी हृदय से सरसराती हुई गले तक आकर भटक गई थी। शान्ति की सी—ई—ई—ने यह बन्द भी तोड़ दिया और वह खिलखिला कर हंस दिया।

"देखो मुझे उल्लू कहने का परिणाम?" सुरेन्द्र ने उसी प्रकार हंसते हुए कहा, "अब यदि भला चाहती हो तो तुरन्त क्षमा याचना करो।"

"अब क्षमा करो, बाबा।"

"क्षमा मांग रही हो ?" सुरेन्द्र ने उसी प्रकार हंसते हुए कहा, "अच्छा क्षमा किया, नमस्ते !" फिर शकुन्तला की ओर देखते हुए कहा "नमस्ते जी !" और कहते २ सुरेन्द्र खट-खट सीढ़ियों से नीचे उतर गया ।

(२)

इससे अगली सन्ध्या की बात है । अन्धेरा धीरे २ मनुष्यों को स्वप्नों के संसार की ओर ले जा रहा था । सुरेन्द्र अभी टेबिल लैम्प को खिड़की के पास ले जा कर कल्पना का संसार बसाने ही वाला था कि कमरे का द्वार खुला और शान्ति ने अंदर पग धरते हुए कहा—

"हम सब जान गए हैं, सुरेन्द्र जी !"

"क्या ?" सुरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा ।

"हम नहीं बताएंगे, जी ।" शान्ति ने आंखें मटकाते हुए कहा ।

"यह अच्छी रही ।"

"जी हां ।" शांति ने दाहिने हाथ की अंगुली को आंखों के समीप ले जाकर हिलाते हुए कहा, "बड़े भोले हैं आप ।"

"अरे भई, कुछ कहो भी तो सही या ऐसे ही कहना शुरू कर दिया ।"

"अब आप क्यों समझेंगे ?" शान्ति ने एक विशेष ढंग से सिर हिला कर कहा ।

"तुम कुछ कहो भी तो" सुरेन्द्र ने तंग आकर कहा ।

"कह दूं फिर"

"हां, हां !"

"और जो इतना सा मुंह रह गया तो ?"

"अब मुंह तो कमती बढ़ती होने से रहा। तुम बात करो।"

"शकुन्तला की बात है।"

"तो फिर कह भी दो।"

"इतने व्याकुल क्यों होते हो।"

"कहो भी"

"शकुन्तला कहती है कि मैं आप से कहूं कि आप उसे हिसाब के सवाल निकलवा दिया करें।"

"बस ?"

"जी बस।"

"बहुत अच्छे ! इतनी सी बात के लिए इतनी लम्बी भूमिका बांधी जा रही थी। अरे तू तो पगली है शान्ति।" कहते २ सुरेन्द्र जोर से हंसा।

"जी हां मैं पगली हूँ।" शान्ति ने कटाक्ष पूर्ण स्वर में कहा, "परन्तु इतनी भोली नहीं जितनी आप समझते हैं।"

"वह कैसे ?"

"शकुन्तला ने मुझे आप से हिसाब के सवाल निकलवाने को क्यों कहा ?"

"यह मैं क्या जानूं ?"

"जी हां, आप क्या जानें। आप तो बिलकुल भोले हैं।"

"तो क्या इस में भी कोई भेद है ?"

"जी ! मेरा भी तो बड़ा भाई एफ० ए० में पढ़ता है। उससे क्यों नहीं सीख लेती हिसाब वह ?" यह कहते समय एक कटाक्ष पूर्ण मुस्कान उसके मुख पर फैल गई।

"अब यह मैं क्या जानूं ?" रुखाई से सुरेन्द्र ने कहा।

"जाकर निकलवाइये न बिचारी को सवाल। बिचारी को

हिसाब आता जो नहीं। केवल आठवीं में सर्व प्रथम ही आई है -ही-ही-ही——" और शान्ति पर हंसी का एक दौरा पड़ गया।

"तो इस में मेरा मस्तिष्क क्यों चाट रही हो। मैं तो उसे कहने नहीं गया कि मुझ से हिसाब के सवाल सीखे।" सुरेन्द्र ने बिगड़ते हुए कहा, "जाओ मुझे पढ़ना है।"

"जी" शान्ति ने सुरेन्द्र के बिगड़ने की चिन्ता न करते हुए कहा, "लाइये, आपका लैंप तिपाई पर रख दूं।" और फिर सुरेन्द्र के मुख की ओर देखे बिना टैबिल लैंप उठा कर खिड़की के पास पड़ी हुई तिपाई पर रख दिया। सामने अपने मकान की खिड़की के समीप बैठी हुई शकुन्तला व्याकुल दृष्टि से सुरेन्द्र की खिड़की की ओर देख रही थी।

शान्ति तेजी से सुरेन्द्र को बाहु से पकड़ कर खिड़की के पास खींच लाई और फिर शकुन्तला की ओर संकेत करती हुई बोली, "वह देखिये, किताब खुली रखी है। अब पढ़ना प्रारम्भ कर दीजीए।" और स्वयं एक ओर हट कर मस्ती से हंसने लगी।

"शान्ति यह बात अच्छी नहीं।" सुरेन्द्र ने क्रोध से खिड़की को बंद करते हुए कहा।

"जी हां, यह बात अच्छी नहीं।" शाँति ने यथा पूर्व हंसते हुए कहा:—

"यदि कोई देख ले तो मुफ्त में बदनामी हो जाए।"

"शान्ति—तुम नहीं मानोगी-"सुरेन्द्र ने शान्ति की कलाई पकड़ते हुए क्रुद्ध आँखों से उसकी ओर घूर कर देखा।

"जी—मेरे मानने का क्या है।" शान्ति ने कलाई छुड़ाने की आवश्यकता अनुभव न करते हुए कहा "बात तो शकुन्तला के

मानने की है।" कहते २ उसने अपनी चंचल आंखें सुरेन्द्र की आंखों से मिला दीं। सुरेन्द्र इस दृष्टि का भाव समझते ही कांप उठा। उसकी पकड़ स्वयमेव ढीली हो गई। फिर सहसा विचार विद्युत गति से उसके मस्तिष्क में कूदा और उस ने बढ़ कर शान्ति को अपने दोनों हाथों में उठा लिया और धीरे २ चलता हुआ पलंग के समीप पहुंच गया। उसे पलंग पर लिटाया और झुककर अपने होंठ उसके होठों पर जमा दिए। शान्ति ने उन्माद भरी आंखों से सुरेन्द्र की ओर देखा और फिर चुपके से आँखें बन्द कर लीं। उसके कोमल बाजू धीरे २ सरकते हुए सुरेन्द्र के बाजुओं से लिपटते गए। धीरे २ उनकी पकड़ दृढ़ होती गई और उसके साथ ही उसके होंठों पर सुरेन्द्र के होंठों की सख्ती। फिर जिस प्रकार एकाएक कोई उन्माद हट जाता है सुरेन्द्र, ने एक झटके के साथ अपने आप को शांति के बाहुओं से छुड़ाते हुए कहा, " जी आप जाइये।"

"सुरेन्द्र "।

"बस, अब जाइये ना।"

"सुरेन्द्र ! "

"जी द्वार वह रहा " सुरेन्द्र ने शकुन्तला के सामने वाली खिड़की खोलते हुए बेपरवाई से द्वार की ओर संकेत किया और फिर दृष्टि शकुन्तला की दृष्टि से मिला दी। दूसरे क्षण शान्ति कूद कर कमरे से बाहिर हो गई।

(३)

शकुन्तला और शान्ति में अनबन हो गई। सुरेन्द्र के अतिरिक्त कोई भी इस का कारण न जानता था। शकुन्तला का साहस प्रशंसनीय था कि उसने शीघ्र ही हमारे घर से सम्ब-

न्ध बढ़ा लिए। पहली बार वह मेरी पत्नी से चादर काढ़ने का कोई नमूना लेने आई। और यह बहाना मात्र था क्योंकि मुझे इस बात को स्वीकार करना पड़ेगा कि मेरी पत्नी को कशीदाकारी में उस जैसी निपुण बनने के लिए वर्षों तक उसका शिष्यत्व ग्रहण करना पड़ता। मेरी पत्नी भी प्रसन्न थी क्योंकि शकुन्तला जैसी सुघड़ लड़की बात २ में उससे दबती थी और उसका प्रत्येक कार्य सहर्ष करने में अपने को धन्य मानती थी।

एक दिन साँयकाल मैं घर आया तो मैंने सुरेन्द्र के बिस्तर पर एक नई चादर देखी जिसके पल्लू पर नीले रंग से सुन्दर फूल काढ़े गए थे। घर में चूंकि ऐसी कोई चादर न थी, इसलिए मैंने साधारणतः अपना विस्मय दूर करने के लिए पूछा,

"यह चादर कहाँ से ली ?"

"ले ली"

"बताओगे नहीं ?"

"बता देंगे।"

"कब ?"

"रात को खाना खाने के पश्चात्।"

"अभी नहीं"

"ऊंहूं !"--और सुरेन्द्र ने कुछ ऐसी मद भरी दृष्टि से मेरी ओर देखा कि मुझे मौन होने पर बाध्य होना पड़ा परन्तु उसके इस वचन ने मेरी उत्सुकता और भी बढ़ा दी। उस सायं मैं खाना अच्छी प्रकार न खा सका। मेरे हृदय में एक खलबली सी मच रही थी और मैं चाहता था कि शीघ्रातिशीघ्र उस भेद से परिचित हो जाऊं। खाना खाने के पश्चात् मैंने सुरेन्द्र की ओर देखा। उसने मेज़ से उठकर मज़े २ से हाथ धोये

कुल्लियाँ कीं और फिर तौलिये से हाथ पोंछकर कहने लगा, आओ चलें।"

"कहाँ ?"

"मेरे कमरे में।"

"चलो" और मैं उसके साथ हो लिया। कमरे में पहुँचकर उसने लैम्प खिड़की के सामने तिपाई पर रखा और फिर खिड़की का एक पट खोलकर मुझे पहलू से झांकने के लिए कहा। मैंने देखा कि अपने मकान की खिड़की के पास बैठी शकुन्तला विचित्र उत्सुकता से सुरेन्द्र की खिड़की की ओर देख रही है। उसकी टांगों पर नीले रंग का रेशमी रूमाल है जिसके किनारे पर वह लाल धागे से गुलाब की पत्तियाँ बना रही है या सम्भवतः बना चुकी है। सुरेन्द्र ने मुझे पीछे हट जाने के लिए कहा और फिर शकुन्तला को सम्बोधित करने के लिए हल्की सी सीटी बजाई। शकुन्तला का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट हुआ तो सुरेन्द्र ने बिना किसी भूमिका के चुपके से कहा,

"यह रूमाल तो हम लेंगे"।

"आपके लिए ही तो है। इसी प्रकार चुपकी सी एक रसपूर्ण आवाज़ सुनाई दी"।

"तो फेंक दो"

"पकड़ लेंगे आप ?"

"जी।"

और शकुन्तला ने रूमाल को एक गेंद सी बनाकर सुरेन्द्र की ओर फेंक दिया। सुरेन्द्र ने इसे सिद्धहस्त मदारी की भान्ति हाथ बढ़ाकर पकड़ लिया और फिर खिड़की से हटकर रूमाल

मुझे दिखाते हुए कहने लगा—

"यह चादर भी यहीं से आई है"।

"अच्छा"

"जी"

और उसने रूमाल रखने के लिए अपने चमड़े का सूटकेस खोला। मैंने देखा इसमें विभिन्न रंगों के लगभग एक दर्जन रूमाल रखे थे। इसने शरारतपूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखा और फिर शीघ्र ही सूटकेस बंद कर दिया। दूसरे क्षण उसने खिड़की के पास जाते हुए कहा,

"आप यानि जाना चाहें तो··· ·········

मैं वहां ठहरने का कोई वहाना न देख चुपके से चला गया।

(४)

कहाँ तो यह दशा थी कि सावित्री के माता पिता सावित्री की मंगनी सुरेन्द्र से करने के लिए बेचैन थे और कहां अब सुरेन्द्र के पिताजी की मृत्यु के पश्चात् उन्होंने चुपके २ सावित्री की मंगनी शान्ति के बड़े भाई ओमप्रकाश से करने की बात-चीत प्रारम्भ करदी और बसंत के दिन वो बात-चीत लगभग पक्की हो गई। घर में यह समाचार दुर्घटना से कम महत्व न रखता था। मेरी पत्नी का मुख यह सुनते ही क्रोध से लाल हो गया। वह उसी समय क्रोध से भरी हुई अपने मामा के घर गई और निरंतर कई घण्टे उनसे लड़ती झगड़ती रही। घर में प्रत्येक व्यक्ति निराश था परन्तु सुरेन्द्र नहीं। यह समाचार सुनकर वह जोर से हंसा और खिलखिलाता हुआ अपने कमरे में चला गया।

सांयकाल जब मेरी पत्नी लौटकर आई तो उसका मुख उदास था और उसके अंग प्रत्यंग से एक इस प्रकार की परेशानी बरस रही थी जिससे मैं अभी तक अपरिचित था। उसने चाची जी (सुरेन्द्र की माता जी) से केवल इतना ही कहा "वह नहीं मानते" और फिर सुरेन्द्र के कमरे की ओर चल दी। मैं भी सब कुछ जानने के लिए साथ हो लिया। उसने भाभी का निरास मुख देखते ही कहा,

"क्यों खैर तो है, भाभी!"

"हाँ, खैर है।" मेरी पत्नी ने निराश स्वर में कहा और पलंग पर बैठ गई।

"अरे खैर है तो फिर तुमने मुंह इतना सा क्यों बना रखा है?" सुरेन्द्र ने अपने विलक्षण ढंग से भाभी को हंसाने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"तुम हंस रहे हो और उधर रोते २ सावित्री का बुरा हाल हो रहा है।"

"अरे यह क्यों?" सुरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा।

"तुम क्या जानो उसके दिल पर क्या बीत रही है।"

"क्या बीत रही है?"

"वह कहती है मेरी सुरेन्द्र से सगाई न हुई तो मैं विष खा लूंगी।"

"भाभी!"

"क्यों?"

"यह सब सत्य है?"

"हां।"

"तो फिर वह अपनी माँ से क्यों नहीं कहती?"

"उसने कहा।"

फिर ?"

माँ ने उसे गालियाँ दीं। निर्लज्ज बेशर्म और न जाने क्या २ कहा और जब उसने हठ की तो उसे पंखे की डंडी से एक दो जड़ भी दीं। तब से बेचारी बरसाती में फूट-फूट कर रो रही है।

"और उसके पिता ?"

"वह उसकी सुनेगें या उसकी मां की ?"

"हूँ !"

"मैं गई तो बेचारी बरसाती में एक खाट पर बिस्तरों के ढेर में पड़ी रो रही थी। मुझे देखते ही मुझसे लिपट गई और सिसकियां ले ले कहने लगी मैं विष खालूंगी, बहिन ! मैंने कहा 'पगली हुई है, सावित्री ?' तो कहने लगी माता पिता को मेरे जीवन की आवश्यकता नहीं तो फिर मैं जी कर क्या करूंगी। फिर अपना सिर गोदी में रख कर आशापूर्ण दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए उसने एक दर्दीले स्वर में कहा:—

'चन्न चढ़े होये लह गए नी'

असां गरीबांदे काम बने होये रह गए नी'

ऐसी कि मैं स्वयं भी रोने लगी। फिर........"

"भाभी !"

"हूँ"

"अब चुप हो जाओ। क्यों मुझे रुलाने पर कटिबद्ध हो ?"

"अब मौन से कुछ न बनेगा, सुरेन्द्र !"

"और अब हो भी क्या सकता है ?"

"तुम पुरुष हो, कुछ साहस से काम लो। सब ठीक हो जाएगा।"

"वह कैसे ?"

"सावित्री को ले कर भाग जाओ"

"भाभी !" सुरेन्द्र ने आश्चर्य से कहा।

"मेरे सभी आभूषण ले जाओ।" मेरी पत्नी ने सुरेन्द्र की सुनी अनसुनी करते हुए कहा, "और कहीं दूर चले जाओ। एक वर्ष इधर उधर बिता आओ। फिर बात स्वयं ही दब जाएगी।

"भाभी !"

"क्या ?"

"सावित्री जाएगी ?"

"वह तैय्यार है।"

"हूं', और सुरेन्द्र को ऐसे लगा जैसे कि वह किसी सिनेमा हाल में बैठा हो और एक स्पष्ट फिल्म तेजी से चल रही हो। वह सावित्री का बाजू थाम किसी अज्ञात स्थान की ओर भागा जा रहा है। सावित्री के सामीप्य से उसके हृदय की धड़कन तेज होती जाती है और सावित्री है कि बार २ उसके बाजू से लिपटी चली जा रही है। उसका हृदय ऐसे धड़कता है जैसे मुद्राणालय में लेथो मशीन पूर्ण गति से चल रही हो। भागते भागते सावित्री हांपने लगी है। वह रुक कर सावित्री को अपने सीने से लिपटा लेता है और प्रेम पूर्ण नेत्रों से उसके मुख की मुख की ओर देखते हुए कहता है,

',सावित्री।'

"स्वामी।"

"और उसे सावित्री के स्वामी कहने से एक विलक्षण विशिष्टता का अनुभव होता है। उसे अपने सीने में एक अज्ञात आनन्द भासता है और ऐसे लगता है जैसे वह फैलता जा रहा हो; संसार के कण-कण पर छाता जा रहा हो।

वह एक सुन्दरी का स्वामी है, वह संसार की सुन्दरतम वस्तु का स्वामी है। वह समस्त संसार का स्वामी है और इस विशिष्ट स्वामित्व के अनुभव से इसका मुख चमक उठता है। उसने मुस्कराते हुए कहा।"

"भाभी मैं तैय्यार हूं।"

'सुरेन्द्र तुम कितने अच्छे हो।" मेरी पत्नी ने बढ़ कर सुरेन्द्र का मुख चूम लिया।

(५)

भाभी के चले जाने के पश्चात् सुरेन्द्र को ऐसे लगा जैसे उसको निर्जन स्थान पर फेंक दिया गया हो। उसे अपना मस्तिष्क हत पक्षी की भाँति फड़फड़ाता हुआ महसूस हुआ वह आश्चर्य चकित था कि उसने भाभी को भाग जाने का वचन कैसे दे दिया। भाभी तो पहले से ही उतावली है परन्तु उसे क्या हो गया था।' उसने यह भी सोचा कि माता जी क्या कहेंगी और संसार———और एकाएक उसे अपने हृदय की गति पुनः तीव्र होती अनुभव हुई। उसके सीने में पुनः एक मुद्राणालय चलने लगा। उसकी आँखें फटने की सीमा तक खुल गईं। एकाएक उसे समस्त संसार घूमता दिखाई दिया कई मुद्राणालय विद्युत गतिसे चलते दिखाई दिए। फिर धुंध छाने लगी। एकाएक इस धुन्ध में उसे कुछ समाचार पत्र -विक्रेता लड़कों की शक्लें दिखाई दीं। उनके हाथों में अखबारों के बड़े २ पुलिंदे थे और वह चिल्ला २ कह रहे थे।

"आज का ताजा अखबार—"

"गर्मागर्म खबरें।"

"डी० ए० वी० कालेज रावलपिण्डी का एक विद्यार्थी एक युवती को भगा ले गया। पूर्ण प्रेम का परिणाम"

'एक प्रतिष्ठित हिन्दू परिवार की लड़की का अपहरण'

'सगाई छूट जाने पर एक नवयुवक का आवेश,

'अपनी मंगेतर का दूसरे से विवाह सहन न कर सका'

पढ़ो जी !

प्रताप, मिलाप, तेज, रियासत प्रभात, वीरभारत अखबार...

इसे इन पत्र-विक्रेता लड़कों की आवाजें अपने कानों में चीखती हुई महसूस हुईं। उसने दोनों हाथों से अपना सिर पकड़ लिया और चुपके से पलंग पर लेट गया।

बिजली जोर से कड़की और फिर तेज वर्षा होने लगी। प्रकृति उसी प्रकार तड़प रही थी जिस प्रकार सुरेन्द्र परन्तु विस्मय की बात है कि इस आवेश के बावजूद शीघ्र ही निद्रा ने उसे अपनी गोदी में थपकियां दे देकर सुला लिया।

अगले दिन प्रातः जब वह जागा तो आकाश स्वच्छ था और उसका मस्तिष्क भी। उसने चाहा कि वह गत घटनाओं पर विचार करके अपने लिए कोई मार्ग निकाले कि सहसा कमरे का द्वार खुला और शान्ती ने वहीं द्वार पर खड़े २ कहा "सुरेन्द्र, जी बधाइ हो। मेरे भैय्या की सगाई हुई है।" और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना वह मुंह चिढ़ा कर भाग गइ।

सुरेन्द्र के लिए अब निश्चय करने की आवश्यकता न रही। उसे लगा कि अब भाभी के साथ किए वादे को निभाने के अतिरिक्त कोई मार्ग नहीं। कुछ भी हो, एक सुन्दर लड़की का सामित्व तो प्राप्त होगा ही।

कुछ दिन बीत गये परन्तु इस विचार को क्रिया का रूप न दिया जा सका। योजना यह थी कि सावित्री को मेरी पत्नी की मासी, जिसे इस भेद में शामिल किया गया था, किसी बहाने अपने घर ले आए। वहां से सुरेन्द्र और वह पहली गाड़ी से बम्बई भाग जाएं।

परन्तु या तो सावित्री के माता पिता के कानों में इस बात की भनक पड़ गई या उन्होंने स्वतः ही सावित्री के आने जाने पर पाबंदियां लगा दीं। फलतः मेरी पत्नी और उसकी मासी के सभी प्रयत्न निष्फल हो गये और वह सावित्री को अपने घर लाने में सफल न हो सकीं। फिर धीरे २ इस बात की चर्चा समाप्त हो गई। मेरी पत्नी का उत्साह भी कम होता गया और सुरेन्द्र को तो इस प्रतिदिन की दौड़भाग से घृणा सी होने लगी। इधर भाग्य ने पासा बदला। सुरेन्द्र एक दिन किसी भोज पर गया। वहाँ बाहिर से बहुत बड़े जमींदार भी आए हुए थे। सुरेन्द्र उनको ऐसा भाया कि उन्होंने उसी दिन अपनी दोहिती की सगाई सुरेन्द्र से कर दी। सुरेन्द्र की माता जी हमारी योजनाओं से अपरिचित थीं और चाहती थीं कि सुरेन्द्र की सगाई शीघ्र कहीं हो जाए ताकि सावित्री के माता पिता का अभिमान टूटे। सगाई धूम-धाम से हुई और सुरेन्द्र की माता जी ने खूब मन के अरमान निकाले।

और इसके कुछ ही समय पश्चात् सावित्री का विवाह शांति के बड़े भाई से हो गया और एक दिन वसंत के मेले पर अचानक सावित्री सुरेन्द्र को अकेली जाती दिखाई दी, वह रास्ता काट कर उस ओर हो लिया। परन्तु इस सुरेन्द्र के लिए विष खाने वाली सावित्री ने सुरेन्द्र को नमस्ते तक भी न की

और मुंह दूसरी ओर करके पास से निकल गई।

और वह मुंह चिड़ाने वाली शांति सुरेन्द्र की बेपरवाही और घृणा के आघात सहन करती रही और यद्यपि उस के सीने पर सांप लौटते रहे परन्तु उसके मुख पर कटाक्ष भरी मुस्कान वैसे ही बनी रही। अंततः इस पीड़ा से फुंकती हुई वह क्षय रोग का शिकार हो गई। और एक लम्बे वर्ष की लम्बी २ घड़ियों में धीरे २ समाती हुई समाप्त हो गई। परन्तु सुरेन्द्र अपनी बेपरवाई का दर्दनाक परिणाम देखने से बचा रहा। वह तो कब से आगे पढ़ने के लिये लाहौर जा चुका था।

छठा परिच्छेद

नोट :—इससे पूर्व मैं सुरेन्द्र के साथ रहा या यदि वह मुझ से अलग भी हुआ तो कुछ घण्टों या अधिक से अधिक कुछ दिनों के लिए। अतः गत सभी घटनाएं मुझे साथ २ ज्ञात होती गईं। अब सुरेन्द्र लाहौर में था और कभी २ एक आध दिन के लिए हमें मिलने आ जाता था अतः निम्न लिखित घटनाएं मुझे किस्तों में पता चलीं परन्तु प्रवाह बनाए रखने के लिए उनको क्रमशः लिखता हूँ :—

लाहौर में आकर सुरेन्द्र का पुराना स्वभाव पुनः उभर आया अर्थात् वह चाकलेट खाने लगा या सम्भवतः प्रकृति एक कोमलांगी को सुरेन्द्र के चाकलेटों का निशाना बनाना चाहती थी अतः इसने सुरेन्द्र में इस विस्मृत स्वभाव को पुनः जागृत करना आवश्यक समझा। यह स्वभाव जागा भी तो ऐसा कि उसने डिब्बों पर डिब्बे खरीदने प्रारम्भ किए। स्वभावतः इसका मन एक आध डिब्बे से न भरता था और वह चाहता था कि भिन्न भिन्न प्रकार के चाकलेटों के ५, ७ डिब्बे हर समय उसके सामने रहें।

लाहौर में उसने होटल में ठहरने की बजाए गवालमण्डी में एक चौबारा किराये पर लिया और उसे अपनी इच्छानुसार सजाया। उस के साथ के चौबारे में कोई मिस्टर कौल रहते थे। वह सम्भवतः हाईकोर्ट में स्टेनो थे। वह ३०, ३५ वर्ष की आयु के एक हंसमुख व्यक्ति, समाज के एक ऐसे अंग थे जिन्हें सभ्य

भाषा में 'बाल ब्रह्मचारी' कहते हैं। पहले दिनों उन्होंने सुरेन्द्र को चाय पर बुलाया और शीघ्र ही खुल गए। सुरेन्द्र में उन्होंने न जाने क्या कुछ देखा कि उसे तुरंत 'प्रिन्स' की उपाधि दे दी। सुरेन्द्र भी इस उपाधि पर झूम उठा। बहुत शीघ्र इनके सम्बन्ध घनिष्ठ हो गए। फिर तो यह अवस्था हो गई कि बिना सूचना एक दूसरे के पास आने जाने लगे। मिस्टर कौल शतरंज के निपुण खिलाड़ी थे। सुरेन्द्र को भी शतरंज सीखने की उत्सुकता हुई और वह अपने खाली समय का आधा भाग उनके पास बिताने लगा। मिस्टर कौल को भी सुरेन्द्र का सहवास प्रिय था क्योंकि सुरेन्द्र ने कुछ महीने से कहानियां लिखनी प्रारम्भ करदी थीं। और यद्यपि मिस्टर कौल साहित्य-कार न थे परन्तु साहित्य के प्रशंसक अवश्य थे। सुरेन्द्र में उन्होंने एक भावुक आत्मा पाई और यह बात एक बार उन्होंने सरेन्द्र से भी कही। चांदनी रात थी। सुरेन्द्र और मिस्टर कौल छत पर बैठे शतरंज खेल रहे थे कि अचानक कौल का 'वजीर' सुरेन्द्र के 'घोड़े' से पिट गया। कौल को संदेह हुआ कि घोड़ा पहले से उस खाने में न था, सुरेन्द्र ने अवश्य धोखा किया है। यह बात उन्होंने निर्द्वन्द्व कह दी। सुरेन्द्र को यह इतनी बुरी लगी कि उसने तुरंत खेलना छोड़ दिया और उठते हुए कहने लगा, "अब आपके साथशतरंज नहीं खेलूंगा।"

कौल बेचारा बहुत विस्मित हुआ। उसने यह बात साधारणतः ही कह दी थी। उसे क्या पता कि सुरेन्द्र उसे इस रंग में लेगा और इस मित्रवत् सरलता को अपना अपमान मानेगा। उसने बढ़कर सुरेन्द्र के हाथ पकड़ लिए परन्तु

कितनी ही देर वह उसे कुछ भी न कह सका और अंत में कहा भी तो केवल इतना

"प्रिन्स" मैंने तुमसा भावुक व्यक्ति आज तक नहीं देखा।"
दूसरे दिन मिस्टर कौल स्वयं सुरेन्द्र को मनाने गए। सुरेन्द्र ने भी बात को बढ़ाना उचित न समझा और उनसे कह दिया आप चलिए मैं क्षण भर में कपड़े बदकर आता हूँ।

सुरेन्द्र जब मिस्टर कौल के कमरे में पहुंचा तो उसने मिस्टर कौल को अपनी प्रतीक्षा करने की बजाए गली की ओर खुलने वाली खिड़की के साथ चिपके देखा।

"क्यों खैर तो है ?" सुरेन्द्र ने अपने विशिष्ट ढंग से पूछा।

"स– स—"कौल ने होंठों पर अंगुली रखते हुए कहा। फिर हाथ के संकेत से उसे अपने पास बुला लिया।

सुरेन्द्र के निकट पहुँचते ही मिस्टर कौल ने धीरे से कहा,

"इधर आओ कुछ दिखलाएं।" फिर सुरेन्द्र को बाजू से पकड़कर उन्होंने खिड़की की ओट से एक ओर संकेत किया।

सामने मकान की आधी खुली खिड़की में पर्दा एक ओर सरकाए कोई सामने शीशा रखे एक उल्लास मयी सुन्दरी अपने लम्बे घुंघराले बालों को संवार रही थी। बार २ उसका सिर आगे की ओर झुकता था। कंघी वाला हाथ बालों तक पहुंचता था। वह झटके से सिर को ऊंचा उठाती था। लम्बी गर्दन में एक सुन्दर झुकाव आता था और छाती इस ढंग से उभरती थी कि दिल कांप उठता था !

"क्यों है न आग ?" मिस्टर कौल ने सुरेन्द्र को आंख मारते हुए कहा।

"जी ब्रह्मचारी जी !—देखना कहीं हाथ न जला बैठना ।"

"ऐसा भाग्य कहां ?" मिस्टर कौल ने दीर्घ निःश्वास भरते हुए कहा।

जलने की इच्छा है तो मैदान में निकल कर जलो। सुरेन्द्र ने हंसते हुए कहा, "ऐसे बंद कमरे में सीने से स्टीम छोड़ने का क्या लाभ ।"

"छोड़ो भी इन बातों को ।" मिस्टर कौल ने दीर्घ निःश्वास भरा, और कहा, "विवाह करना होता तो आज से आठ वर्ष पहले कर लिया होता। परन्तु वास्तविकता यह है कि विवाह का बोझ उठाने की सामर्थ्य उस समय थी न अब है।"

"तो फिर इस प्रकार सेंध लगाने से क्या लाभ ?"

परन्तु इससे पूर्व कि मि० कौल कुछ उत्तर देते उस मोहिनी ने बाल संवार चुकने के पश्चात् शीशा उठाकर मुख के समाने किया बालों की सजावट को विभिन्न रंग में देखा। फिर स्वयं मुस्कराती, इठलाती और नृत्य करती हुई खिड़की से हट गई।

प्रिंस—क्यों है न राजकुमारी ?—" मि० कौल ने सुरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा।

"खूब है !" सुरेन्द्र ने सरलता से उत्तर दिया।

"खूब है, ऊंह।" मि० कौल ने मुंह चिढ़ाते हुए कहा, अरे प्रिंस, तुम्हें साहित्यकार किस अभागे ने बना दिया। मुझ से पूछो तो चुगताई की समस्त कला की सीमा नाहीद है।"

"क्या नाम लिया ?" सुरेन्द्र ने प्रथम बार उत्सुकता प्रकट की।

"नाहीद अख्तर--है न राजस्वी नाम ?" मि० कौल ने उसी उत्साह से उत्तर दिया।

"ना--ही--ई --ई--ई--द" सुरेन्द्र मुंह में गुनगुनाया और अपनी जिह्वा पर धीमी सी सीटी बजने का आभास हुआ। उसने मनोभावों को छुपाने का असफल प्रयत्न करते हुए कहा, "नाम तो सुन्दर है।"

"और स्वयं सुन्दर तर—हाथ ला उस्ताद ! क्यों कैसी कही ? कहते २ मि० कौल ने जोर से सुरेन्द्र की हथेली पर हाथ मारा और फिर खिलखिला कर हंस दिये। सुरेन्द्र ने भी मौन रहना उचित न समझा और मि० कौल की हंसी में शामिल हो गया।

This is very good book

(२)

सुरेन्द्र ने इस मुहल्ले में मकान इसलिए लिया था कि वह कोमलांगियों के पैने शरों की चुभन सहते २ तंग आ गया था और चाहता था कि कुछ दिन चैन से बिता सके। इस मुहल्ले में दो पर्दादार मकानों के अतिरिक्त सब दुकानें थीं या उस जैसे ब्रह्मचारियों के चौबारे। अतः उसे विश्वास था कि यहां अपनी अपनी तानें उड़ें तो उड़ें परन्तु कामदेव के आक्रमण न होंगे। वह क्या जानता था कि मि० कौल के कथानुसार इन पर्दों में आग लिपटी है जो अपनी एक ही लपक से इसके शांति और सुख को भस्म कर देगी और उसके हृदय में भावनाओं की एक ऐसी चिंगारी जलाएगी कि इसका भाग्य बेचैन करवटों से भर जाएगा। मि० कौला के कमरे से लौटने के पश्चात् वह कितनी ही देर यह सोचता रहा कि यदि नाहीद

पूर्णतः अग्नि थी तो उसके लिए ही क्या उसकी लपेट में आना आवश्यक है ? उसके अंगों की प्रत्येक हरकत यदि हत्यारी थी, उसकी अदाओं का निशाना क्या इसी ने बनना था। और सहसा उसे अपने तर्क पर हंसी आई। उसे चुना किसने ?—वह तो स्वयं ही निशाना बनने को बेचैन हो रहा है चाहे उसे कोई चुने या न चुने।—और उसे करेगा ही कौन ?—इन सख्त चुभ जाने वाले नख-शिख से यह आशा रखना कि वह उसकी भावनाओं को सहलाएगी, मूर्खता से क्या कम है ? एकाएक उसकी दृष्टि के सामने नाहीद की लम्बी २ पलकें, उसकी धनुष की भांति झुकी हुई भवें, और उसके सांप की भांति बल खाये हुए बाल घूमने लगे। अचानक उसे विचार आया, यह जो कवि लोग लम्बी २ बल खाई अलकों को काले सांपों से उपमा देते हैं तो क्या बुरा करते हैं ? यह धनुष की भांति झुकी हुई भवें—और उसने आंखें बंद करके अनुभव किया। जैसे वह लम्बी २ पलकें बाणों का रूप धारण करती जाती हैं और वह बाण उसके हृदय को निशाना बनाते हुए आकाश में लहराते हुए उसकी ओर बढ़ रहे हैं—वह लम्बे २ काले पैने बाण—और वह भावातिरेक से कांप उठा। उसने झट से आंखें खोल दीं। वह लम्बे २ काले बाण वापिस लौट चुके थे। कमरा खाली और चुपचाप था। केवल प्रकाश की एक तेज़ लकीर रोशनदान को चीरती हुई उसके मुख पर पड़ रही थी या न जाने यह किसी मोहिनी की भटकी हुई दृष्टि थी। उसने बढ़कर रोशनदान का कपड़ा फैला दिया परन्तु इस प्रकाश रश्मि के रुकते ही इसे कमरे का वातावरण घुटा २ सा लगने लगा। वह घबराकर कमरे से बाहिर निकल आया और

तेज़ २ सीढ़ियां चढ़ता हुआ छत पर पहुँच गया परंतु यहां सम्भवतः प्रकृति उसे एक और आपत्ति में फंसाना चाहती थी। अपने मकान की छत पर खड़ी नाहीद अंगड़ाई ले रही थी। सुरेन्द्र को देखते ही उसके उठे हुए हाथ एक ओर गिर गए। सुरेन्द्र को ऐसा लगा कि यह नाहीद की अंगड़ाई नहीं टूटी बल्कि उसके सीने पर सैंकड़ों आघात हुए है। एक क्षण के लिए दोनों के नेत्र मिले। दोनों एक साथ ठिठक कर पीछे हटे। फिर सुरेन्द्र तो खड़ा मुस्कराता रहा परन्तु नाहीद शरमा कर झेंपकर साड़ी का आंचल संभालती हुई तेज़ी से सीढ़ियों में गायब हो गई। क्षणभर के लिए सुरेन्द्र की आंखों में चकाचौंध सी हुई। उसने आंख बंद करके जोर से दोनों हाथों से मलीं परंतु आंख खोलने पर भी उसे चहुं ओर अंधकार फैलता हुआ अनुभव हुआ। एकाएक प्रकृति ने शोक का पहरावा पहिन लिया और सनसनाती हुई वायु से उसके कानों में शरद् निःश्वास आने लगे। उसने स्वतः को संभालने के लिए सिर को जोर से झटका दिया। फिर धीरे २ सीढ़ियां उतरने लगा। उसी समय क्लाक ने टन २ छः बजाए। सुरेन्द्र को ऐसे लगा जैसे घण्टे की एक चोट उसके हृदय पर पड़ रही है और प्रत्येक चोट के साथ उसका हृदय फ़ुलबुला कर उठता है। उसे भय हुआ कि कहीं घण्टे की अंतिम चोट उसके हृदय की अंतिम धड़कन न बन जाए। अतः घण्टे की अंतिम चोट लगने से पूर्व वह एक आहत पक्षी की भांति अपने पलंग पर गिरा और अपने हृदय को पकड़कर रह गया।

× × × × ×

वह रात सुरेन्द्र ने बिस्तर पर करवटें ले लेकर काटी। अगले दिन प्रातः जब उठा तो एक विलक्षण बोझ उसके अंग

प्रत्यंग पर छाया हुआ था। उसने एक अंगड़ाई ली और फिर आँखें बन्द कर स्वप्नों के संसार में जाने का यत्न किया। एकाएक पास से ही एक काग की काँय-काँय की आवाज आई। वह तिल मिला कर उठ बैठा और सोचने लगा कि ईश्वर यदि काग को न बनाता तो क्या हानि थी। कोकिला को देखो, यद्यपि इसी प्रकार काली है परन्तु कितना मधुर स्वर है उसका और बुलबुल............और तो और यह चिड़ियाँ भी जब चहचहाती हैं तो एक सुहावना स्वर उत्पन्न होता है। परन्तु यह कमबख्त किस ज़ोर से चींखता है जैसे काट ही तो खायेगा और उसने हाथ हिलाकर काग को उड़ा दिया और उसके मुख पर हल्की मुस्कान खिल उठी परन्तु वह जाते २ एक दुःखद विह्वलता छोड़ गई। उसकी नाक और ठोडी के बीच २ दुःखदाई रेखा खिंच गई और उसने निराश नेत्रों से नाहीद के कोठे की ओर देखा। ऊपर की मंजिल के छत पर ऊंचे पर्दों के बीच वह न जाने स्वप्न मुग्ध थी अथवा उसी की भाँति अंगड़ाइयाँ ले रही थी और वह सोचने लगा कि नाहीद के घर वाले तीसरी मंजिल की छत पर क्यों सोते हैं जबकि दूसरी मंजिल पर आवश्यकता से अधिक खुली जगह है। काश कि उन के मस्तिष्क में कोई यह घुसेड़ दे और वह आज से तीसरी मंजिल की छत की बजाय दूसरी मंजिल की छत पर सोना प्रारम्भ कर दें। और उसने विकल दृष्टि तीसरी मंजिल की ओर डाली। पर्दों के अन्दर उसे हरे रंग का एक आँचल सरकता हुआ दिखाई दिया। उसने तुरंत निर्णय कर लिया कि यह आंचल वाली नाहीद है और उसके मुख से एक दीर्घ श्वास निकला। वह आँचल सरसराता हुआ गायब

हो गया और उसके हृदय-संसार पर पुनः अंधकार छाने लगा। वह उठा और छत पर इधर उधर टहलने लगा। सहसा उसे दूसरी मंजिल पर पुनः हरे दुपट्टे की झलक दिखाई पड़ी। वह तेज़ २ चलता हुआ जंगले की ओर बढ़ा परन्तु उन के समीप पहुंचने से पूर्व वह हरा दुपट्टा सरकता हुआ सीढ़ियों में गायब हो चुका था। वह क्षोभ से हाथ मलता हुआ वापिस लौटा और धीरे २ सीढ़ियां उतरता अपने कमरे में पहुंच गया।

उस दिन कालेज में भी सुरेन्द्र कुछ खोया-खोया सा रहा और जब वापिस लौटा तो उस पर एक निराश मौन छाया हुआ था। होंठ मौन, जैसे सिले हुए हों और आँखें फटी हुई परन्तु वह अत्यधिक खुली हुई आंखें सब कुछ देखते हुए कुछ भी न देख रही थीं और वह मौन होंठ न जाने चुपके-चुपके उसके मन से क्या बातें कह रहे थे कि बार २ उसका मस्तिष्क खौल उठता था। पुस्तकें एक ओर फेंकने के पश्चात् वह उसी प्रकार पतलून पहिने पलंग पर लेट गया, सिर पर जोर से रूमाल बांधा। सुराही से उंडेल कर एक गिलास पानी पिया। बिजली का पंखा अपनी ओर मोड़ा और मस्तिष्क से परेशान विचारों को निकालने के लिए जोर से आखें बंद कर लीं। फिर सम्भवतः प्रकृति को उस पर दया आई और शीघ्र ही निद्रा की गोद में पहुंच गया।

उसे जब सुद्ध आई तो क्लाक टन टन छः बजा रहा था। वह घबरा कर उठ बैठा। उसे ऐसा लगा कि नाहीद मकान की छत पर खड़ी उसकी प्रतीक्षा कर रही है और यह क्लाक की टन टन उसका बुलावा मात्र है और या वह क्लाक के द्वारा

कह रही थी कि कल तो इस समय से पहले छत पर पहुंच गए थे। आज यह विलम्ब क्यों ?—और वह अपने मकान की सीढ़ियाँ तेज़ २ चढ़ता हुआ छत पर पहुंच गया।

अपने मकान की छत पर खड़ी नाहीद व्याकुल नेत्रों से सुरेन्द्र की छत की ओर देख रही थी। दृष्टि मिली और एक मोहक मुस्कान सुरेन्द्र के होठों पर खिल उठी। नाहीद क्षण भर के लिए झिझकी। उसने मुस्करा कर सिर झुका लिया परन्तु वहाँ से चले जाने की आवश्यकता अनुभव न की।

कुछ दिन बीत गए। यह देखादेखी का सिलसिला बढ़ता गया। एक दिन सुरेन्द्र को जो शरारत सूझी तो उसने नाहीद के सीने का निशाना बाँध कर एक चाकलेट फेंका। परन्तु नाहीद ने रुष्ट होने के बजाय चाक लेट उठाया और वर्क उतार मुंह में डाल लिया। फिर तो समय असमय आकाश में चाकलेट उड़ने लगे और सुरेन्द्र की अलमारी में रक्खे डिब्बे शीघ्र खाली होने लगे। परन्तु अभी तक यह बात चाकलेटों की सीमा से आगे न बढ़ी थी कि एक दिन ———दोपहर को सुरेन्द्र अपने कमरे में बैठा स्वाध्याय में व्यस्त था कि उसके कमरे का द्वार धीरे २ खुला और दस वर्ष का एक सुंदर बालक कमरे में प्रविष्ट हुआ। अंदर आते ही कहने लगा,

"लालाजी—क्या समय है ?"

सुरेन्द्र की समझ में आजतक यह बात न आई कि उस बालक ने उसे लाला जी कह कर क्यों पुकारा। वह अभी लग भग २० वर्ष का था परन्तु इस बालक की दृष्टि में वह इतना बड़ा कैसे हो गया कि उसने उसे लाला जी कह कर पुकारना उचित समझा। सम्भवतः इसका कारण वह वातावरण हो जिस में

यह बालक पला, जहाँ प्रत्येक हिंदू को लाला समझा जाता है और छोटे बड़े का भेद ही उड़ा दिया गया है।

"एक बजकर बीस मिनट" सुरेन्द्र ने रिस्टवाच पर दृष्टि डालते हुए कहा। उत्तर पाकर भी वह लड़का वहीं खड़ा रहा और फिर स्वयं ही एक क्षण के पश्चात् कहने लगा।

"वह पूछती हैं।"

"कौन?" सुरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा।

"वह"

"वह कौन?"

"वह सामने"

और सुरेन्द्र ने उस बालक का संकेत समझ कर खिड़की में बाहर झाँक कर देखा। इस चिलचिलाती धूप में अपने मकान की छत पर खड़ी नाहीद सुरेन्द्र की खिड़की की ओर देख रही थी। वह हल्के तरबूजी रंग का दुपट्टा ओढ़े हुए थी। उसके लाल और श्वेत गाल धूप की गर्मी से अंगारा बन रहे थे और यह दिखाई नहीं पड़ता था कि कहाँ जाकर उसके गालों की लाली उस दुपट्टे में मिल गई है। सुरेन्द्र को देखते ही वह मुस्कराई और मस्त प्रेम-पूर्ण दृष्टि से उसकी ओर देखा। सुरेन्द्र ने भी उस दृष्टि का उसी ढंग से उत्तर दिया। परन्तु एकाएक किसी बात का ध्यान आने से तिपाई पर पड़ा हुआ टाइमपीस उस ने खिड़की में परे रख दिया और उसका मुंह नाहीद की ओर कर दिया। नाहीद कुछ समय टिकटिकी बान्धे टाइमपीस की ओर देखती रही परन्तु सम्भवतः सूर्य की तीव्र रश्मियों ने शीशा पर पड़ कर उसकी आँखों में चकाचौंक पैदा कर दी कि पर्याप्त समय के पश्चात् भी वह समय न जान सकी।

उसने हाथ के संकेत से अपनी विवशता प्रकट की तो सुरेन्द्र ने दोनों हाथ मुख पर रखकर तेज़ परन्तु धीमे स्वर में कहा !

"एक बज कर बीस मिनट "

न जाने इस अल्पायु बालक को खड़े २ क्या स्मरण हुआ कि उसने सुरेन्द्र के पास आकर कहा।

"हमें पांच बजे शाहू की गढ़ी जाना है।"

"अच्छा" सुरेन्द्र ने उसकी ओर देखते हुए कहा, " कौन कौन जाएगा ?"

" मैं जाऊंगा और आपा जाएंगी"

" और कौन जाएगा ?"

"और तो सब प्रातः ही चले गए। आपा मेरे लिए रह गई है क्योंकि मैं स्कूल गया हुआ था।"

" अच्छा ". और सुरेन्द्र ने एक बार पुनः खिड़की से नाहीद के कोठे की ओर झांका। परन्तु नाहीद सम्भवतः चिलचिलाती हुई धूप सहन न कर सकी थी । इसलिए सुरेन्द्र के नेत्रों को निराश लौटना पड़ा। उसने पुनः लड़के को सम्बोधित करते हुए कहा।

" तुम्हारा क्या नाम है ? "

" शौकत"

" अच्छा तो तुम ठीक पांच बजे जाओगे।"

" जी, और आपा कहती थी कि आप को अच्छी प्रकार समझा आऊं।"

" क्यों "

" कि हम दोनों ही शाहू की गढ़ी जाएंगे।"

सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए सिर हिलाया।

"अच्छा, सलाम।" और कहते २ शौकत सीढ़ियों की ओर बढ़ा। सहसा किसी विचार के आने से सुरेन्द्र ने शौकत को ठहराने के लिए कहा। फिर बढ़कर मुट्ठी भर चाकलेट उस की पाकिट में डाल दिए और एक चवन्नी उसकी हथेली पर रख दी और शौकत मुस्कराता हुआ तेजी से सीढ़ियां उतर कर गायब हो गया।

शौकत के चले जाने के पश्चात् एकाएक सुरेन्द्र को ऐसा लगा कि उसका हृदय ज़ोर २ से धड़क रहा है। नाहीद का संदेश उसकी आशा से अधिक आशापूर्ण था। स्पष्ट था कि वह कोमलकली चाहती थी कि सुरेन्द्र उसकी मधुरता का आनंद ले। वह चाहती थी कि सुरेन्द्र उसके साथ शाम के पांच बजे चले और फिर शाहू की गढ़ी पहुंचने से पूर्व किसी होटल में कमरा किराया पर लेकर.........और इसके आगे वह कुछ न सोच सका। उसका मस्तिष्क आने वाली घटनाओं की कल्पना मात्र ही से झूम उठा। उसने पुस्तक उठा कर जोर से पलंग पर दे मारी और उन्मादी सा होकर कमरे में नाचने लगा।

चार बजे के समीप उसने नया सूट निकाला। प्रातः शेव की थी परन्तु अब फिर की। बालों में फिर से कोटी का तेल लगाया। सूट से मिलती जुलती टाई निकाली और इत्र में बसाया और साढ़े चार बजे से पूर्व तैय्यार होकर खिड़की के पास बैठ गया। पुस्तक हाथ में ली और अरुचि से पढ़ने लगा।

सहसा उसे सामने के मकान की खिड़की खुलने की आवाज़ सुनाई दी। उसने आंखें उठाकर खिड़की की ओर देखा। नाहीद ने खड़की का पर्दा सरकाते हुए एक भरपूर दृष्टि उस पर डाली और उसे तैय्यार देखकर मुस्कराती हुई पर्दे के पीछे छुप गई।

अभी पांच बजने में कुछ मिनट शेष थे कि शौकत तांगा ले आया और उसके कुछ ही क्षण पश्चात् वह मस्त यौवना गहरे नीले रंग के ईरानी ढंग के बुर्के में लिपटी हुई अत्यंत वेग से चलती हुई आकर तांगे में बैठ गई। बुर्के का एक कोना उठा और सुरेन्द्र ने देखा कि वह मृग नयना उसकी खोज में है। उसने कमरे को ताला लगाया और तेजी से सीढ़ियां उतर ड्योढी फांदता हुआ गेट के समीप पहुंच गया।

"प्रिन्स !" किसी ने पीछे से पुकारा और सुरेन्द्र ने क्षुब्ध होकर मुड़कर देखा कि ड्योढी पर एक ओर मि०कौल कमान बने साईकल को ताला लगा रहे हैं। सुरेन्द्र का ध्यान अपनी ओर देखते ही वह चिल्लाए।

"कहाँ भागे जा रहे हो ?"

"अभी आया।" कहते २ सुरेन्द्र ने चाहा कि द्वार पार करके गली में पहुंच जाए कि मि० कौल जोर से चिल्लाया

"प्रिन्स अरे यार ठैरो भी। एक अत्यावश्यक कार्य है।"

"क्या है।" सुरेन्द्र ने दुखी होते हुए कहा।

"अरे भाई सुनो तो" और मि०कौल ने सुरेन्द्र के निकट आकर चुपके से कहा "यह नाहीद और उसका भाई आज तांगे में बैठकर कहीं अकेले बाहिर जा रहे हैं। आओ हम भी ताँगा लेकर इनका पीछा करें।"

और सुरेन्द्र को ऐसे लाग जैसे किसी ने उसके हृदय में सिक्का भर दिया है और वह नीचे ही नीचे बैठा चला जा रहा है। वह क्षण भर के लिए मौन रहा। उसे अपनी आशाओं का भव्य प्रासाद धराशायी होता महसूस हुआ। उसने घबराकर तांगे की ओर देखा, उसे बुर्के की ओट से दो विकल नेत्र दिखाई दिए। उसके सीने से हूक सी उठी। उसने तिलमिला कर दृष्टि झुका

लीं। एक क्षण पश्चात् जब उसने मुंह खोला तो स्वयं उसे अपनी आवाज अपरिचित सी लगी। उसने मरी हुई आवाज़ में कहा।

"मुझ से यह न हो सकेगा, मित्र !"

"बड़े कायर हो।" कौल ने सुरेन्द्र की निश्चलता पर क्षुब्ध होते हुए कहा, "ऐसे अवसर भी कभी हाथ से खोने के होते हैं ?"

"यह बात नहीं है मित्र"·········परन्तु कुछ और कहने से पूर्व तांगा सुरेन्द्र के पास से निकल गया। सुरेन्द्र ने देखा कि दो प्रार्थी नेत्र अब भी बुर्के की ओट से उसे संदेश दे रहे थे। उसे अपना मस्तिष्क घूमता हुआ लगा। मस्तिष्क में तांगे के पहिये तेजी से चक्कर खाते हुए अनुभव हुए। उसका सिर जोर से चकराया और उसने दोनों हाथों से माथा पकड़ते हुए कहा,

"मेरा मन ठीक नहीं है।"

"ओह ! यह बात है ?" मि० कौल ने सुरेन्द्र को सहारा देते हुए कहा, "चलो ऊपर चलें" और कहते २ मि० कौल ने अपना बाहु सुरेन्द्र के गले में डाल दिया और उसे पकड़े हुए सीढ़ियों की ओर ले चला। सुरेन्द्र ने मुड़ते हुए देखा। गली के मोड़ के पास तांगा रुक गया था और नीले बुर्के की ओट से निकले हुए एक श्वेत हाथ में एक सफेद क्रेप का रूमाल हलकी हरकतों से कुछ कह रहा था। उसने घबरा कर आंखें बंद कर लीं, निचले होंठ को जोर से काटा और अपना समस्त बोझ मि० कौल पर डाल दिया।

(३)

दूसरे दिन जब सुरेन्द्र कालेज में गया तो उसकी यह दशा थी कि यदि कोई उसे कोई भूले से छू भी बैठता तो वह लुढ़कता हुआ कहीं जा रहता। उसका शरीर एक अज्ञात मानसिक सन्ताप के कारण उसके अकुंश से बाहिर होता जा रहा था। वह पग धरता कहीं था और पड़ता कहीं था। पग-पग पर उसे अपने सामने सितारों का धुआँ उड़ता दिखाई देता था। और तो और स्वयं उसके सिर में तारे नाच रहे थे। और सम्भवतः इन सब से अधिक चमकदार नक्षत्र स्वयं नाहीद थी। एकाएक उसके मस्तिष्क में एक चटक सी अनुभव हुई और उसने सोचा कि वह सभी नक्षत्र टूट रहे हैं। वह चलते २ एक स्तम्भ से टकरा गया और अपनी आँखों के समक्ष उसे एक चिनगारी सी उड़ती दिखाई दी जैसे कोई नक्षत्र टूट कर प्रकाश की एक लम्बी रेखा अपने पीछे छोड़ता जाता है। वह सर पकड़ कर वहीं बैठ गया और यदि उसका एक मित्र उसे आश्रय देकर एक बेंच पर न लिटा देता तो सम्भवतः वह वहीं फर्श पर गिर जाता।

कहीं मानसिक रोगों के लिए अमानसिक चिकित्सा बहुत उपयोगी साबित होती है। नमक और काली मिर्च मिली सोडा और सिकंजाबीन ने सुरेन्द्र के मस्तिष्क में काफी शांति की और वह दूसरे घण्टे में इस योग्य हो गया कि क्लास में बैठ कर लैक्चर सुन सके। परंतु लैक्चर अभी आरम्भ हुआ ही था कि चपड़ासी ने आकर प्रोफेसर को एक चिट दी और प्रोफेसर ने पढ़ते ही कहा,

"मि० सुरेन्द्र, तुम्हें कोई महिला बाहिर बुला रही है।"

सुरेन्द्र घबरा कर अपने स्थान से हटा। एक क्षण के लिए वह यह न समझ सका कि प्रोफेसर के कहने का आशय क्या है। कोई महिला बुलाती है—मुझे—कौन स्त्री बुला सकती है? वह मन ही मन उलझता हुआ पुस्तकें उठा कर बाहिर चल दिया। सहसा उसने सोचा कि यह स्त्री कहीं नाहीद न हो, और उसका हृदय सीने में निरंकुश उछलने लगा। नाहीद उफ् वह प्रिय आकाँक्षा! और इससे अधिक सोचने की उसे आवश्यकता अनुभव न हुई। वह तेज़ २ चलता हुआ द्वार के समीप पहुंच गया। इसके इस ओर एक आकर्षक हरे रंग की कार के समीप हरे रंग की साड़ी पहने एक नाहीद की प्रतिद्वंदी, खड़ी थी। सुरेन्द्र उसे पहचानते ही चीख उठा।

"ओह! उर्मी—तुम-कहते २ उसने उर्मिला के बढ़े हुए हाथ को अपने हाथ में लेकर जोर से दबा दिया।

"अच्छा हुआ मिल ही गए।"—उर्मिला ने मुस्कराते हुए कहा।"

"किसने बताया तुम्हें कि मैं यहाँ पढ़ता हूं?" सुरेन्द्र ने यथा पूर्व आश्चर्य पूर्ण नेत्रों से उर्मिला की ओर देखते हुए कहा।"

"बस जान गई।"—उर्मिला ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

"फिर भी।"

"पीछे बतलाऊंगी।" उर्मिला ने मोटर का द्वार खोलते हुए कहा,

"अब चलें।"

"कहां?" सुरेन्द्र ने और भी चकित हो कर पूछा।

"यहीं किसी रैस्टोरैन्ट में चाय आदि पियेंगे और बातें भी करेंगे।"

"ओह? अच्छा, अच्छा—"सुरेन्द्र ने मोटर में प्रविष्ट होते हुए कहा। फिर एकाएक उसे विस्मृत दिनों का स्मरण हो आया। इसके साथ ही एक चंचल मुस्कान उसके मुख पर खिल उठी। उसने मुस्कराते हुए कहा,

"मैं ने समझा शायद घर, घर, खेलने चलेंगे।"

"घर, घर" और उर्मिला ने बैठते हुए एक दीर्घ श्वास लिया "सुरेन्द्र! काश तुम गुम न हो जाते तो सम्भवतः यह खेल सदैव खेला जाता।" फिर एक दुखी ढंग से कन्धे हिलाते हुए उसने मोटर स्टार्ट कर दी। सुरेन्द्र ने देखा कि एक क्षण पूर्व खिलखिलाती हुई उर्मिला का मुख अब सूखे पत्ते की भाँति पीला है। उसने कुछ क्षण तीखे नयनों से उर्मिला के मुख की ओर देखा। फिर आंखें बन्द करके सिर को सीट के पीछे डाल दिया। उसे बार-बार वह नन्ही उर्ली याद आ रही थी जो उसकी अलमारी से खेल की वस्तुएं उठा कर भाग जाया करती थी, जो रस्सी टापती-टापती खुशी से टाप उठती थी और जोर-जोर से ताली बजाने लगती थी, जो एक समय तक उसके साथ बाग के अन्धेरे गोले कोने में 'घर, घर' खेलती रही थी। कौन जानता था कि वह नन्ही सी कली इतनी शीघ्र निखर कर पुष्प बन जाएगी जिसे तोड़ने के लिए वह विह्वल हो उठेगा। उसे अपने सीने से एक हूक सी उठती हुई महसूस हुई। उसने एक चोरों की सी दृष्टि उर्मिला के मुख पर डाली। उसके साथ ही उर्मिला के माथे की बिंदी उसके हृदय में बुरी तरह खटकने लगी। उसने एक दीर्घ निःश्वास भरा और फिर से आंखें बंद करके सिर को

सीट के पिछली ओर लगा दिया । मोटर एक झटके साथ रुकी। उर्मिला ने द्वार खोलते हुए कहा, "क्या सोच रहे हो ?"

"सोच रहा हूं कि प्रकृति भी कितनी निर्दयी है।" सुरेन्द्र ने सीट से उठते हुए कहा। फिर एक उचटती सी दृष्टि उर्मिला के मुख पर डाली। उसने आश्चर्य से देखा। उर्मिला फिर पहले की भाँति मुस्करा रही है।

उसने मोटर से उतरते हुए कहा

"जाओ भी उर्मी ! तुमने तो मझे परेशान कर दिया।"

"अब आइस क्रिम खिलाऊंगी मन अच्छा हो जायगा" कहते २ उर्मिला अपनी उन्मत्त विलक्षण गति से स्टैण्डर्ड में चली गई और पीछे सुरेन्द्र भी।

हाल के सिरे पर एक अलग बाक्स में बैठते हुए उर्मिला ने बैरे से दो गिलास आरैंज सक्वैश' (Orange Squash) और कुछ पेस्ट्री लाने को कहा। फिर तिपाई पर कुहनियां रखते हुए कहने लगी'

"क्या हो रहा है तुम्हें ?"

"कुछ नहीं।"—सुरेन्द्र ने संभलते हुए उत्तर दिया।

"मेरा मिलना बुरा तो नहीं लगा ?"

"कैसी बात कर रही हो, उर्मिला ! तुम्हें मिलने तो मैं पेशावर गया था।

"सच ?"

"जी"

"फिर !"

"पता चला कि तुम्हारे बंगले में कोई श्री कपिला रहते हैं।"

"फिर बहुत दुखी हुए होंगे ?"

"दुख की पूछती हो। मेरे लिए वहां एक क्षण ठहरना कठिन हो गया। बस उसी दिन शाम की गाड़ी से रावलपिण्डी लौट आया।"

"कबकी बात है?"

"पिछली गर्मियों की।"

"अरे तभी तो मैंने तुम्हारी खोज से थक कर जीवन की बाजी हार दी थी।"

"वह कैसे?"

उर्मिला के कुछ भी उत्तर न देने से पूर्व बैरा सामान लेकर आ गया। सुरेन्द्र ने सब सामान तिपाई पर रखते हुए एक ओर पैनी दृष्टि उर्मिला के मुख पर डाली। उसके मुख पर पुनः वही निराशा छा गई थी जो उसने मोटर में बैठते हुए देखी थी। उस ने एक गिलास उर्मिला की ओर सरकाते हुए मन ही मन विचार किया कि निश्चय ही इन नीले नयनों में कोई दुःखद कहानी करवटें ले रही है। उसने दूसरा गिलास अपनी ओर सरकाते हुए कहा,

"उर्मिला!"

"जी"—उर्मिला जैसे चौंक सी उठी।

"तुमने बताया नहीं कि तुम जीवन की बाजी कैसे हार बैठीं?"

"अब सुनकर क्या लोगे, सुरेन्द्र! बाण हाथ से छूट कर लौटा नहीं करते।"

"तो मेरे पीछे तुम बाण चलाती रही हो?"

"हां, जिन्होंने मेरा अंग-अंग घायल कर दिया है।"

"उर्मिला!" सुरेन्द्र ने व्याकुल होते हुए कहा।

"जी"—उर्मिला ने दृष्टि ऊपर करते हुए कहा और सुरेन्द्र ने देखा कि इन नीले नयनों में छाई हुई घटाएं अब बरसने पर तुल आई हैं। उसने दुखी होते हुए कहा।

"उर्मिला, तुम्हें मेरे जीवन की सौगन्ध जो सच २ न कहो।"

"सुरेन्द्र, यह तुम अच्छा नहीं कर रहे।" उर्मिला ने गिलास हाथ में रखते हुए कहा और फिर एक क्षण के पश्चात्...

"अच्छा सुनो।"

और सुरेन्द्र उर्मिला के कहने की चिन्ता किए बिना तन्मयता से सुनने लगा। उर्मिला कहने लगी। "तुम चले आए और मेरे स्वप्नों का संसार उजड़ गया। पहले तो मैं यह समझी कि यह क्षणिक धोका है। परन्तु जैसे २ दिन बीतते गए तुम्हारी याद मेरे हृदय में गहरी होती गई। फिर हम लाहौर चले आए। यहां आते ही मेरे विवाह के लिए संदेश आने लगे परन्तु मैं किसी न किसी बहाने से टालती रही। अन्त में मेरा आशय समझ कर पिता जी ने यही उचित समझा कि मैं अपने लिए वर स्वयं खोजूं। माँ भी मान गईं और मैं तुम्हें ढूंढने निकल पड़ी।"

"उर्मिला" सुरेन्द्र ने उर्मिला के बाजू को पकड़ते हुए कहा।

"अब रोको नहीं, सुरेन्द्र।" उर्मिला ने उसी प्रकार सिर झुकाए हुए कहा, "अन्यथा मेरा अंकुश टूट जाएगा और मैं फूट पड़ूंगी।"

"अच्छा कहो।"

"तुम पेशावर से रावलपिण्डी गए थे। मैं सीधी रावल-

श्री टी० सी० जोशी एल० एल० बी०।"

"ओह श्रीमती जोशी! क्षमा करना, बातों २ में यह पूछने का ध्यान ही न रहा कि आप क्या पीना पसंद करेंगी।"

"सुरेन्द्र!"

"जी"

"अब कटाक्ष करने पर उतर आए?"

"नहीं उर्मिला।" सुरेन्द्र ने निढाल होकर कुर्सी पर बैठते हुए कहा, "मैं तो केवल गत घटनाओं को भूलने का यत्न कर रहा हूँ। मैं भूल जाना चाहता था कि मेरे समक्ष वही उर्मिला बैठी हुई है जो कितने ही समय तक बाग़ के उस निर्जन कोने में मेरे साथ 'घर-घर' खेलती रही है।" यह कहते हुए सुरेन्द्र ने मुख दूसरी ओर कर लिया और पलकों पर उमड़ते हुए अश्रु रूमाल से पोंछ डाले।

"पागल हो रहे हो सुरेन्द्र!" उर्मिला ने अपने स्थान से उठते हुए कहा, "यह बालकों की भांति रोना तुम्हें अच्छा नहीं लगता।"

"मुझे कुछ देर रो लेने दो, उर्मिला!" सम्भवतः इस से मेरा शरीर खुल जाए।"

"यह घर बुलाकर अच्छी सेवा हो रही है हमारी?" उर्मिला ने सुरेन्द्र को चुप कराने का और कोई ढंग न देखते हुए कहा,

"ओह! क्षमा करना, उर्मिला।"—सुरेन्द्र ने अश्रु पोंछते हुए कहा—फिर चाहा कि खिड़की खोलकर नीचे दुकानदार से सोडा आदि लाने के लिए कहे कि उर्मिला ने रोकते हुए कहा,

"बाजार से कुछ मत मंगवाओ, जो कुछ घर में है पर्याप्त

होगा । घर की सुराही का पानी विम्टो से भी अच्छा होता है।"

"उर्मिला !"

"जी"

"तुम इसे अपना घर कह रही हो ?"

"तो और क्या कहूँ ?"

सुरेन्द्र चुपके से पलंग पर बैठ गया । क्षण भर के लिए उसके विचार भागते हुए उसी बाग के निर्जन कोने में पहुँच गए। उसे उस ईंटों के घरौंदे का स्मरण हो आया । उसने सोचा कि उस सूने बन में जो आनन्द था वह यहां नहीं मिल सकता। एकाकी उसे अपने मन में एक तूफान सा उठता महसूस हुआ । उसने दृष्टि उर्मिला के मुख पर गाड़ते हुए कहा।

"उर्मिला !"

"जी"

"एक बात कहूँ, बुरा तो न मनाओगी ?"

"नहीं तो"

"आओ 'घर, घर खेलें ।"

सुरेन्द्र ।"

"हाँ उर्मिला । एक बार जीवन में आज अन्तिम बार हम यह खेल खेल लें !"

"सुरेन्द्र !"

"देखो उर्मिला, मुझे निराश मत करो ।"

"सुरेन्द्र !"

"उर्मिला । क्या तुम्हें मुझ पर विश्वास नहीं ?"

"विश्वास" उर्मिला ने हिचकिचाते हुए कहा "विश्वास तो है, परन्तु......................

"क्षमा करदो उर्मिला !" सुरेन्द्र ने अपने आप को पलंग पर गिराते हुए कहा, "आओ खेल खेलें।" और उर्मिला के उत्तर की आवश्यकता अनुभव किए बिना वह अलमारी के निकट पहुंच गया।

अचानक घर पर कुछ अलीची और आलूबुखारा था। सुरेन्द्र ने थर्मोस से बर्फ निकाली और प्लेट में अलीची और आलूबुखारा रखकर ऊपर बर्फ डाल दी। उर्मिला नेत्र फाड़-कर सुरेन्द्र के मुख की ओर देखती रही परन्तु मुख से कुछ भी न कहा। उस पर एक मौन छाया हुआ था। मानो किसी जादूगर ने उसपर जादू कर दिया हो। प्लेट तिपाई पर रख कर उसके समीप लाई गई तो उस ने एक मन्त्र मुग्ध की भांति एकाध आलीची छील कर खाई। सुरेन्द्र ने भी बाधित करना उचित न समझा। उर्मिला ने फल से हाथ खेंचा, उधर उसने बाजू से खेच कर उर्मिला को पलंग पर अपने पास लिटा लिया। फिर दोनों बाजू उर्मिला की कमर के इर्द गिर्द डाल कर उसे जोर से सीने से चिपटा लिया और काफी समय तक उसे उसी प्रकार चिपटाए रखा। उसकी छाती दो अग्निमय चट्टानों से टकरा रही थी और उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा था कि इन मूक चट्टानों के पीछे निरंतर भूकम्प के झटके आ रहे हैं और प्रत्येक झटके के साथ उर्मिला का मानसिक संतुलन भंग हो रहा है और उर्मिला की पकड़ दृढ़ हो रही है। धीरे २ उर्मिला के नयन अर्द्धनिमीलित होते २ पूर्णतः मदमत्त हो गए। उस ने आंखें बन्द करके अपना बायां गाल सुरेन्द्र के दायें गाल से

लगा दिया। सुरेन्द्र भावातिरेक से कांप उठा। उस ने एक बार पूरी शक्ति से उसे अपने शरीर से लिपटा लिया फिर उस के सिर और जांघों को हाथ डालकर उसके कोमल और लचकीले शरीर को अपनी गोदी में ले लिया। और उसी ढंग से पलंग पर आधे बैठे और आधे लेटे हुए उस ने अपने होंठ सुरेन्द्र के होठों से मिला दिए। सुरेन्द्र ने एक दीर्घ चुम्बन का अनुभव किया मानो उसकी आत्मा पिघल कर उर्मिला के शरीर में घुस जाना चाहती है। वह स्वप्नों के एक सुन्दर और मधुर संसार में पहुंच गया है, जैसे वह मधु के दीर्घ घूंट भर रहा है। उर्मिला के दोनों हाथ सुरेन्द्र के बाजुओं से निकल कर उस के कन्धों पर फैले हुए थे। उसने अनुभव किया वह धीरे २ सरकते हुए उसके सिर के पिछली ओर पहुंच गए है। उसने होठों का बोझ उर्मिला के होठों पर और भी अधिक कर दिया। फिर उस के होंठ कुछ हिले और उसने उर्मिला के निचले होंठ को अपने होठों में लेकर जोर से दबाया। उर्मिला के सीने में मधुर गुदगुदी हुई।

उसने एक बार जी भर कर सुरेन्द्र की ओर देखा। फिर बल-पूर्वक आंखें बंद कर लीं। सुरेन्द्र ने बढ़कर उन मत्त नयनों का चुम्बन ले लिया और फिर माथे का। उसके साथ ही उर्मिला के माथे की बिंदा छुरे की भांति उसके सीने में चुभी। उसके बढ़ते हुए होंठ वहीं रुक गए। उसके सीने से एक टीस सी उठी और उसके अंग प्रत्यंग को कम्पायमान करती हुई समाप्त हो गई। उसे अपनी हरकत पर परेशानी सी महसूस हुई। उसको ऐसे लगा की उसने जान बुझ कर अपने पाँव में कुल्हाड़ी मार ली है। उसे उर्मिला के माथे की बिंदी के पीछे अपनी आशाओं की अर्थी

दिखाई दी। उसके सीने से दुःख और शोक का एक तूफान उठा और उसकी आंखें अश्रु पूर्ण हो गई।

परन्तु उर्मिला उसके इस मानसिक संघर्ष से अपरिचित उससे लिपटी जा रही थी। सहसा लावे की एक बूंद उसके मुख पर गिरी—फिर एक और—उर्मिला ने तिलमिला कर आंखें खोल दीं! उसने देखा कि सुरेन्द्र की आंखें जिनसे क्षण भर पूर्व प्रेम-रस बरस रहा था अब रक्त बहा रही थीं। वह सर से पांव तक काँप उठी। उसे ऐसा लगा कि यह पिघला हुआ लावा उसके कपोलों को चीरता हुआ उसके सीने में उतर जाएगा और उसकी आकांक्षाओं को जला कर राख कर देगा। उसने घबरा कर दोनों हाथों से सुरेन्द्र की आंखों को ढाँप दिया। सुरेन्द्र ने समझा कि उसके और उर्मिला के बीच एक अमिट भीत आ खड़ी हुई है। कल्पना के विशाल भवन की दीवारें कांपी। आकांक्षाओं का जादू टूटा। उसने एक गहरा लम्बा श्वास भरा और उर्मिला को धीरे से बाहुओं से पकड़ कर पलंग पर लिटा दिया और स्वयं उचक कर नीचे उतर गया।

कुछ देर उर्मिला फटी २ आँखों से सुरेन्द्र के मुख की ओर देखती रही। उसे विश्वास न होता था कि क्षण भर पहले वह जिस सुन्दर संसार में थी वह इतना थोदा और अल्पकालिक होगा कि आँखों से निकले आंसू उसको मटियामेट करने के के लिए पर्याप्त होंगे। या वह एक स्वप्न था, एक सुन्दर स्वप्न जो एकाएक भंग हो गया। परन्तु नहीं, वह स्वप्न नहीं था। उसका आनन्द तो अभी भी उसके अंग-अंग में समा रहा था। फिर धीरे २ उसकी दृष्टि स्वयं ही नीचे झुक गई। सुरेन्द्र के मुख पर फैलती हुई परेशानी ने उसे लज्जा के सागर में डुबो

दिया। उसके माथे से पसीने की धारा बह निकली। उसने आंचल से माथे को पोंछा और सिर को और भी झुका दिया।

कुछ क्षण कमरे में मौन छाया रहा—मृत्यु से भी अधिक भयंकर मौन। फिर उर्मिला ने झिझकते हुए पूछा,

"क्या मैं जा सकती हूँ?"

और सुरेन्द्र कुछ भी उत्तर दिए बिना चुपके से उसे नीचे पहुँचाने के लिए उठ खड़ा हुआ। मोटर में बैठते हुए एक बार फिर उसने सुरेन्द्र की ओर देखा। अभी तक एक गम्भीर मौन उसके मुख पर छाया हुआ था। दोनों ने हाथ मिलाए। आँखों ने कुछ कहा भी परन्तु होंठ मौन रहे और मोटर चल दी।

सुरेन्द्र जब अपने कमरे में लौटा तो उसका मस्तिष्क घूम रहा था। दिन भर की घटनाएं उसके मस्तिष्क पर इतनी तीव्र गति से घूम रही थीं जैसे किसी स्टण्ट फिल्म की अव्यवस्थित रीलें। उनसे ऐसी परेशानी टपकती थी जैसी कि एक उजड़ी सभा से। उसने सोचा कि आज प्रातः वह कितना चिंतित और परेशान था। यहाँ तक कि उसे अपना जीवन अजीर्ण दिखाई पड़ता था। फिर एकाएक उसके जीवन में प्रसन्नता का फव्वारा फूट निकला। परन्तु उमंगें अभी प्रेमोद्यान में ही मचल रही थीं कि उनका गला घोंट दिया गया और वह दीपक की अंतिम टमटमाहट बन गईं। उमंगें अपनी असमर्थता के लिए दुखी होकर चुप हो गईं—चुप—काश कि वह चुप हो जातीं। परन्तु वह तो जाते २ दुःख, क्लेश, वेदना, उन्माद और व्याकुलता से भर गईं। एक हृदय था और आपत्तियों का तूफान।

एक हृदय और अपूर्ण आकांक्षाओं की एक बाढ़ ! वह किंकर्तव्य-विमूढ़ था कि वह एक भावुक हृदय को किस किस आपत्ति से लड़ायेगा। एक शीशे को किस पत्थर से टकरायेगा। सहसा उसे जिगर का वह पद स्मरण हो आया।

"एक दिल है और तूफाने हवादिस ऐ जिगर
एक शीशा है कि हर पत्थर से टकराता हूँ मैं"

और उसे लगा कि उसका हृदय मांसपेशियों से नहीं शीशे के टुकड़े से बना है और वह इसे हाथ में लेकर बड़े पत्थरों से टकरा रहा है। टक टक टक, खट खट, टक टक, खट खट खट ! वह चौंक सा उठा ! कोई धीरे २ द्वार खटखटा रहा था। उसने घबराकर सम्भलते हुए कहा,

अन्दर आ जाओ।"

धीरे २ द्वार खुला और शौकत अन्दर आया।

"तुम शौकत ! सुरेन्द्र ने बौखलाते हुए कहा और उसे ऐसे लगा कि उसकी आशाओं का गला घोंटने में शौकत का भी भाग है। उसे शौकत का आना इतना बुरा लगा कि उसने शुष्कता से पूछा।

"कैसे आए ?"

"आपा पूछती हैं, आप कल क्यों नहीं आए ?"

"नहीं आ सका।"

"आज सिनेमा देखने चलेंगे ?"

"नहीं।"

"क्यों ?"

"बस, कह जो दिया—अब जाओ—मेरा सिर मत चाटो।"

और बेचारा शौकत सुरेन्द्र के कटु व्यवहार का आशय न समझते हुए क्षण भर के लिए स्तब्ध सा रह गया। वह सुरेन्द्र के मुख की ओर देखने लगा। फिर विस्मय से धीरे २ सिर झुकाए सीढ़ियों से उतर गया।

शौकत के जाते ही सुरेन्द्र का सिर एक बार जोर से घबराया। उसको महसूस हुआ कि शौकत जाते २ उसकी आशाओं का दीपक बुझा गया। उसे अपनी आंखों के सामने अंधेरा छाता हुआ अनुभव हुआ और वह सिर पकड़ कर पलंग पर लेट गया।

× × × × ×

सुरेन्द्र और उर्मिला कई बार फिर आपस में मिले परन्तु इस प्रकार जैसे कि वह बीते दिनों को सर्वथा भुला चुके थे। वह परस्पर हंसते थे, खेलते थे, क्लबों और रैस्टोरैण्टों में जाते थे। निश्चिन्त हो कर एक दूसरे के बाजू में बाजू डालकर चलते थे परन्तु वह विद्युत सम्बन्ध कट चुके थे जिनके कारण दोनों का हृदय जोर से धड़कता था।

उर्मिला का विगत प्रेम जब इस प्रकार सुरेन्द्र के जीवन में स्वप्न और कहानी बन गई तो सुरेन्द्र ने चाहा कि एक बार फिर नाहीद से सम्बंध जोड़े। परन्तु वह अभी तक सौन्दर्य के क्रोध से अपरिचित था। उसका यत्न असफल रहा। नाहीद ने उसकी फेंकी हुई चाकलेटों को उठाकर गली में फेंक दिया। परन्तु सुरेन्द्र ने अपने मन को साँत्वना देने के लिए एक दिन नाहीद का फोटो खेंच लिया और उसको बताया भी नहीं।

सातवां परिच्छेद

परीक्षाएं समाप्त होते ही सुरेन्द्र रावलपिण्डी चला आया और रावलपिण्डी आते ही उसके विवाह की तैय्यारियां होने लगीं। शकुन्तला ने कई बार उसे निराश नयनों से निहारा और सुरेन्द्र ने भी उस दृष्टि का प्रेम पूर्ण ढंग से उत्तर दिया परन्तु सम्भवतः सुरेन्द्र के विवाह के विचार ने ही शकुन्तला को खुल खेलने का साहस न करने दिया। और वह दबी २ घुटी २ सी रहने लगी । उस की दृष्टि में एक तड़प थी । एक भयभीत विहग की भाँति उसकी आँखें प्रेम की उन्हीं चित्ताकर्षक घाटियों में पुनः उड़ना चाहती थीं। परन्तु एक पंख रहित विहग की भांति उन से उड्डयन शक्ति छिन चुकी थी ।

फिर घर में अतिथि आने लगे और यह आशापूर्ण दृष्टि-पात का सिलसिला भी टूट गया । सुरेन्द्र वैसे भी प्रत्येक का दृष्टि केन्द्र था और अब दुल्हा बन कर तो वह एक ही था कि प्रत्येक अतिथि यह चाहता था कि चुम्बक से चिमट कर रहे और इसी केन्द्र के आस पास घूमे और उन ही अति-थियों में एक थी स्मरणा। एक चौदह वर्षीया अविवाहिता लड़की जिसने अभी यौवन की मन-मोहक घाटी में पग रखा ही था और सम्भवतः सब से अधिक उस पर सुरेन्द्र की आकर्षण शक्ति का प्रभाव हुआ था क्योंकि जब कभी वह सुरेन्द्र को

अकेले में देखती वह इससे लिपटने के लिए व्याकुल दिखाई देती।

"आप को तो किसी की चिन्ता ही नहीं।" एक दिन अकेले में शिकायत करते हुए कहा।

"मेरी भी कौन चिन्ता करता है?" सुरेन्द्र ने उसी ढंग से पूछा।

"आप से कौन प्यार न करता होगा ?"स्मरणा ने एक विलक्षण कोमलता से कहा। फिर दोनों हाथ मिला कर सुरेन्द्र के कन्धे पर रख दिए।

"आप करती हैं ? सुरेन्द्र ने शरारत से पूछा।

"मैं तो हर समय आप का नाम जपती हूं।" स्मरणा ने प्रेम-पूर्ण स्वर में कहा।

"तुम्हारा तो काम ही समरना है।" सुरेन्द्र ने स्मरणा की ठोड़ी ऊंची करके उसकी आंखों से आँखें मिलाते हुए कहा। स्मरणा ने प्रेम पूर्ण नयनों से सुरेन्द्र की ओर देखा परन्तु सुरेन्द्र ने उसको खैंच कर सीने से लगाने की बजाये उसके कपोलों पर चुटकी काटी और फिर तीव्र गति से कमरे से बाहिर चला गया। स्मरणा क्षण भर के लिए विस्मय से जाते हुए सुरेन्द्र की ओर देखती रही। फिर उसे किसी का पग-ध्वनि सुनाई दी। और वह इस प्रकार एकाएक सुरेन्द्र के चले जाने का रहस्य समझ गई।

अतिथि समूह बढ़ता गया और स्मरणा को अकेले में सुरेन्द्र से शिकायत करने के अवसर कम मिलने लगे। फिर भी वह जब कभी सुरेन्द्र को अकेले में पाती, एक न एक कटाक्ष अवश्य कर देती। और सुरेन्द्र यह नए २ कटाक्ष सहन करते हुए विवाह की तैय्यारी करता रहा।

विवाह बड़ी धूम धाम से हुआ। देने वालों ने जी खोल कर दिया और लेने वालों ने हाथ बढ़ा कर लिया और जब सुहागरात को दुल्हन का घूंघट उलट दिया तो सुरेन्द्र के मन की आकांक्षाएं सीने में ही कराह कर रह गईं। दुल्हन यद्यपि कुरूपा न थी तो भी उसे रूपवती न कहा जा सकता था।

सुरेन्द्र को अनुभव हुआ कि दुल्हन के रूप में प्रकृति ने उससे बदला लिया है। उसके कर्मों का फल और उसके मनुहारों की समाधि। कला और सौंदर्य की ज्योति से प्रकाशमान अपनी महत्वा-कांक्षाओं की यह दुर्दशा देखकर वह सिर से पाँव तक काँप उठा। उसे अपना हृदय बैठता हुआ महसूस हुआ। लगा कि यह उन भोले भाले दिलों का शाप है जिन के साथ वह बेपरवाई से खेलता रहा और कभी यह ध्यान न किया कि यह कोमल खिलौने यदि टूट गए तो क्या होगा। और वास्तविकता तो यह थी कि उसे इनके टूट जाने में आनंद मिलता था। अब यदि प्रकृति ने स्वयं उसीका दिल तोड़ दिया वह अभिमानि दिल तो इसमें किसी का क्या दोष। इसने तो परमात्मा से नहीं कहा था कि उसे सुन्दर और रूपवती न बनाया जाए। एक निराश कर-वट लेकर वह चुप चाप लेट गया।

अगले दिन इस अप्रिय बोझ को उसके मायके पहुंचाने का कर्तव्य भी समाज की ओर से सुरेन्द्र पर लागू था। ससुराल में उसका स्वागत करने वाली सब से पहली लड़की एक १५ वर्षीया कामिनी थी। जग निर्माता की सुन्दरतम कृति, प्रकृति की कला के लावण्य की पराकाष्ठा! और अभी सोच ही रहा था कि संसार का सम्पूर्ण सौन्दर्य किस प्रकार इन मन-मोहक नयनों और इन पतले २ होंठों में प्रदर्शित हुआ कि वह होंठ हिले और एक मधुर स्वर सुनाई पड़ा,

"सुरेन्द्र जी, नमस्ते।"

वह कुछ समझ न सका कि उस स्वर में मधु की मधुरता, गायन का कम्पन और चुम्बक का आकर्षण किस प्रकार केन्द्रित हो गया। उसने घबरा कर इन मुग्धकारी अधरों की ओर देखा परन्तु उसके कुछ भी करने से पूर्व पतली २ पंखुड़ियाँ फिर हिलीं। वायु में एक कम्पन पैदा हुआ और सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि कोई कह रहा है,

"हम से नहीं बोलेंगे क्या आप ?"

सुरेन्द्र ने कुछ उत्तर अवश्य दिया—क्या ?—यह तो उसे क्षण भर पश्चात भी याद न था और न भरसक प्रयत्न करने पर भी वह उसे आज तक स्मरण कर पाया है।

× × × × × ×

आने वाली रातें नियन्त्रण और व्रत भंग कर देने वाली थीं। सुरेन्द्र यौवन की सुगन्धि में मुग्ध रहा। रात्रि को देर तक वह सुन्दरी सुरेन्द्र से बातें करती रहती। यह बातें न जाने कैसे प्रारम्भ होतीं और अंत भी ईश्वर ही जानता है कि इनका कैसे होता। परन्तु वह बातें किया करते पलंग पर कुहनियां टेके हुए, कुर्सी पर आगे की ओर झुके हुए, तकिये को बाजुओं के नीचे रखे हुए और ठोडी को हाथ का सहारा दिए हुए। इस प्रकार वह निरंतर बातें करते जाते, निरुद्देश्य बातें जो केवल की जाती हैं, समझी नहीं जातीं। रात घनी हो जाती। दमयन्ती अंगड़ाई लेकर उठती, सुरेन्द्र उसे बैठने के लिए विवश करता और वह कुछ क्षण और रुक जाती। फिर उठती और उन्मा-दित नयनों से सुरेन्द्र की ओर देखती हुई अपने कमरे में चली जाती। और सुरेन्द्र पलट कर अपनी पत्नी की ओर देखता जो

पास ही पलंग पर पड़ी अपने खर्राटों से वातावरण को विषैला कर रही होती। वह कलेजा पकड़ कर रह जाता और चुपके से पलंग पर लेट जाता

दिन बीतते गए और सुरेन्द्र के हृदय की धड़कनें दमयन्ती की पगध्वनि के साथ बढ़ने घटने लगीं। उसके आने पर उसका हृदय जोर २ से धड़कने लगता और वह जाती तो उसे अपना हृदय सीने में डूबता महसूस होता। परन्तु जब तक वह उसके पास बैठी रहती, वह हृदय की बढ़ती हुई धड़कन में भी शान्ति अनुभव करता। इस पर भी वह अभी तक न जान पाया था कि दमयन्ती के प्रति जो भाव उसके हृदय में बढ़ रहा है, उसने दमयन्ती पर कितना प्रभाव किया है। दमयन्ती उससे बड़े प्रेम का व्यवहार करती। उसकी छोटी २ आवश्यकताओं का बड़ा ध्यान रखती। परन्तु उसके हाव-भाव से कभी यह प्रकट न होता था कि उसे सुरेन्द्र से प्रेम हो गया है। उसे आश्चर्य होता था कि यदि दमयन्ती का हृदय प्रेम बाणों से नहीं छेदा गया तो उसकी इस समय असमय की सेवा का क्या अर्थ? और यदि यह प्रेम वही है जो नये दूल्हा के लिए प्रायः दिखाया जाता है तो वह रात को इतनी देर तक बातों से क्यों उसका मन बहलाती रहती है? और विशेषतया वही क्यों? घर में और भी तो लड़कियाँ हैं। वह क्यों नहीं उसके सुख का ध्यान रखतीं और क्यों नहीं उसकी सेवा की ओर लगी रहतीं?

उसे वह घटना याद आई जबकि वह और उस का साला एक साथ खाना खा रहे थे। दमयन्ती दो प्लेटें फिरनी लाई। उन में से एक बड़ी थी और दूसरी छोटी। दुर्भाग्यवश जिस ओर सुरेन्द्र बैठा था उस हाथ में छोटी प्लेट थी। दमयन्ती निकट पहुंच कर क्षण भर के लिए हिचकिचाई, फिर बड़ी चप-

लता से बाजुओं को कैंची की भाँति काटकर बड़ी प्लेट सुरेन्द्र के और छोटी उसके साले के सामने रख दी। सुरेन्द्र इससे बड़ा प्रभावित हुआ। उसके हृदय में प्रसन्नता की एक तरंग उठी और यदि सम्भव हो सकता तो वह उसी समय उठकर उसकी कोमल और सुन्दर अंगुलियों को चूम लेता। परन्तु अत्यन्त निकट निकट आने पर भी सुरेन्द्र को कभी इस बात का साहस न हुआ कि वह दमयन्ती से खुल जाए। वह तेज पूर्ण सौन्दर्य सम्भवतः एक ऐसी महत्ता और पवित्रता का प्रति-बिम्ब था कि उसे छूने के विचार भर से वह कांप उठता था। उस ने अनेक बार प्रयत्न किया कि कम से कम दमयन्ती की अंगुलियों को एक आध बार अपने हाथ में लेकर दबा ही दे परन्तु जभी इसकी सरकती हुई अंगुलियां दमयन्ती की अंगुलियों से छूतीं, वह घबरा कर उनको पीछे हटा लेता। दमयन्ती दो एक बार इसकी इस बात पर मुस्कराई परन्तु उसकी यह मुस्कान ऐसी रहस्यपूर्ण थी कि वह इतना भी न समझ सका कि यह उसके आगे बढ़ने के लिए आवाहन है अथवा उसकी गिरावटों पर एक क्षमायुक्त कटाक्ष। फिर एका-एक घर से दो तीन पत्र आए। वह वापिस जाने पर बाधित हो गया। विदाई से पूर्व भाग्यवश वह एक बार अकेले में मिल गये। दोनों ने एक दूसरे की ओर देखा, फिर दमयन्ती ने शिकायत करने के ढंग से कहा,

"आप तो जाते ही हमें भूल जायेंगे।"

"तुम्हें दमयन्ती ! तुम्हें मैं कभी भूल सकता हूँ ?"

"आपका क्या है ?"

"क्यों ?"

"इतने दिन आप...........और दमयन्ती कहते २ रुक गई ।

"हां हाँ कह दो न अब ।"

"अच्छा जाने दीजिए।" दमयन्ती ने दीर्घ निःश्वास भरते हुए कहा। "

"अब बात को पूर्ण करदो, दमयन्ती ।" सुरेन्द्र ने प्रार्थना पूर्ण स्वर से कहा ।

परन्तु दमयन्ती एक बार रुक जाने के पश्चात् पुनः न खुल सकी और सुरेन्द्र की सभी प्रार्थनाएं निष्फल रहीं। दमयन्ती ने एक बार प्रार्थनापूर्ण नयनों से सुरेन्द्र की ओर देखा और केवल इतना कहा,

"देखो सुरेन्द्र मुझे विवश न करो ।"

और सुरेन्द्र इस तेजोमयी सौन्दर्य की यह प्रार्थनापूर्ण दृष्टि सहन न कर सका कि हिमालय की चोटियाँ झुक धूलिसार हो जाएं । उस ने इसमें सुन्दरता का अपमान देखा। अतः दमयन्ती के मुख पर निराश दृष्टि डाल कर कमरे से बाहिर निकल गया ।

कई महीने बीत गये और सुरेन्द्र दाम्पत्य जीवन की कटुताओं से परिचित होता गया । उधर वह कटुताएं और इधर नौकरी की खोज । वह सुरेन्द्र जिस की योग्यता का कभी सिक्का जमा हुआ था दिन-दिन भर इधर उधर भटकने के पश्चात् भी कोई अच्छी नौकरी न ढूंढ सका । अन्त में थक कर चालीस रुपये मासिक की क्लर्की स्वीकार कर ली। और वह सुरेन्द्र जो कभी चालीस रुपये मासिक किराये के मकान में रहने में अपनी मानहानि समझता था, भाग्य के चक्र से

चालीस रुपये पाने वाला क्लर्क बन गया और वह भी रावलपिण्डी से बहुत दूर ज़िला शेखुपुरा में। बीते दिनों की कल्पना करके उसके हृदय से एक हूक सी उठती और वह कलेजा पकड़ कर रह जाता। फिर इन अन्धकार पूर्ण दिनों में यदि दमयन्ती का स्मरण हो आता तो यह चिंगारी सुलग कर उसके जीवन के अन्धकार को और भी बढ़ा देती।

दिन बीतते गये और दमयन्ती का स्मरण सुरेन्द्र के सीने में एक निरन्तर चुभन बनता गया परन्तु जीविका की चिन्ता ने इस लम्बे काल में भी इस भावना को पनपने न दिया। फिर एकाएक उसे मलिकवाल से एक बलावा आया। किसी कमला का विवाह था। पूछने पर पता लगा कि वह उसकी पत्नी की दूर के रिश्ते से बहन थी। वह उसकी मुंह बोली सहेली थी। सुरेन्द्र दफ्तरी जीवन से थक सा गया था। उसने तुरन्त एक सप्ताह की छुट्टी के लिये प्रार्थना पत्र भेज दिया जो कि स्वीकार कर लिया गया।

अगले दिन दोपहर की गाड़ी से वह अपनी पत्नी के साथ मलिकवाल चल दिया। रास्ते में लाला मूसा के स्टेशन पर गाड़ी बदली। यहां फिर भाग्य ने एक करवट ली। इण्टर के जिस जनाने डिब्बे में उसने अपनी पत्नी को बिठाया, उसी में स्मरणा बैठी हुई थी। दोनों के नयन मिले, हृदय सीने में जोर जोर से धड़के और सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि यह हृदय धड़क २ कर सब भेद खोल देंगे। उसने जल्दी से स्मरणा को नमस्ते कहा और उसकी तृषित निगाहों से घबरा कर दूसरे कमरे में चला गया।

स्मरणा भी कमला के विवाह पर मलिकवाल जा रही थी। रात को नौ बजे के लग भग वह मलिक वाल पहुंचे। यात्रा की

थकान के कारण सुरेन्द्र ने तुरन्त यह जानने की आवश्यकता न समझी कि उसके सम्बन्धियों में से कौन-कौन आए हुए हैं। उसने खाना खाया और कपड़े बदल कर सोने के लिए चला गया। उसके और उसकी पत्नी के सोने के लिए एक अलग कमरा था। वह सोना चाहता था। अतः उसे कमरे का अकेलापन बहुत अच्छा लगा। उसकी पत्नी खाकर स्त्रियों के समूह में जा मिली जो बैठी ढोलक पीट रही थीं। वह जानता था कि रात को देर तक यह इसी प्रकार ढोलक पीटती रहेंगी और पुराने गीत गाती रहेंगी जो सम्भवतः महाभारत काल के स्मृति चिन्ह थे। यद्यपि पिछले कुछ समय से ढोलक पर माहिया भी चलने लगा था तो भी वह इस आशा पर अपनी नींद खराब न करनी चाहता था।

सर्दी का मौसम था। उसने सभी खिड़कियां बन्द करदीं और पर्दे फैला दिए। इस प्रकार वह दो उद्देश्य सिद्ध करना चाहता था। खिड़कियां बन्द करने से सर्दी के अतिरिक्त ढोलक और गाने की आवाज भी दूर ही रहती थी। उसने द्वार भी बंद कर दिया। उसका बस चलता तो कुण्डी भी चढ़ा देता परन्तु वह जानता था कि दो बजे के समीप पत्नी धपधपाती हुई आएगी और यदि द्वार बन्द हुआ तो वह खटखटा कर आकाश सिर पर उठा लेगी और वह नहीं चाहता था कि आधी रात के समय उसकी नींद पर इस प्रकार अत्याचार किया जाए।

वह अभी अर्द्धनिद्रित अवस्था में था कि उसे अपने बिस्तर में कुछ सरसराहट सी महसूस हुई। फिर किसी ने दोनों बाजू उसकी गर्दन में डाल दिये और बढ़कर उसके होंठों का चुम्बन ले लिया। उसने घबरा कर आंखें खोल दीं और स्मरणा को अपने पहलू में लेटा देख कर वह अत्यन्त विस्मित हुआ।

"तुम !———स्मरणा।"———सुरेन्द्र ने बौखलाते हुए कहा। "जी———" स्मरणा ने मुस्कराते हुये कहा, मुझे जरा सर्दी लग रही थी और कमरे में अंगीठी एक ही थी जिसके आस-पास सभी स्त्रियां बैठी ढोलक बजा रही थीं। इसलिये मैं चुप-चाप तुम्हारे पास चली आई।" कहते २ स्मरणा ने अपना बायां बाजू सुरेन्द्र की कमर के नीचे से डाल कर उसे जोर से अपने सीने से भेंच लिया।

"और अगर कोई आ गया तो ?"

"मैं ने कुण्डी लगा दी है।" स्मरणा ने उसी मुदित स्वर में कहा।

"इस द्वार को ?"

"जी इस द्वार को भी।"

और सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि वह सब प्रकार से सुरक्षित है तो उसने मुस्कराते हुए कहा।

"तुम बड़ी चंचल हो"

"जी" स्मरणा ने गर्व से सिर हिलाते हुए कहा। सुरेन्द्र को उसकी यह बात कुछ ऐसी भाई कि उसने बढ़ कर अपने होंठ स्मरणा के होठों से मिला दिए और देर तक उन पतले २ अधरों का रस चूसता रहा। स्मरणा ने भी सुरेन्द्र की इस बात का उसी ढंग से उत्तर दिया। फिर दोनों एक दूसरे को गुदगुदाने लगे। इसी समय स्मरणा की छातियों पर सुरेन्द्र का हाथ पड़ा। उसने इसको पकड़ कर खूब मसला। दूसरे ही क्षण वह मांस के टुकड़े चट्टान की भांति सख्त हो गए। सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि यह है यौवन जिसमें पुष्प की सी कोमलता भी है और चट्टान की सी सख्ती भी। उसने कल्पना की कि सम्भवतः इसी दृढ़ता के कारण स्त्रियां जब किसी से प्रेम करने लगती हैं

तो संसार की कोई भी शक्ति उनको अपने प्रेमी के पास पहुंचने से रोक नहीं सकती। इसी स्मरणा को देखो बीसियों स्त्रियों के समूह में से कैसे आंचल बचा कर निकली होगी। और फिर अपनी प्रतिष्ठा को खतरे में डाल कर किस उद्यमता से उसकी बगल गरम करने को पहुंच गई। स्मरणा के इस बलि-दान की कल्पना करते ही उसका सीना प्रेम के भावों से भर उठा। उसने स्मरणा के अधरों को पुनः चूमा और उसे सीने से लगा कर जोर से दबाया और देर तक इसी प्रकार से दबाए रक्खा। उसी समय किसी की पगध्वनि सुनाई दी और उनके हृदयों में विद्युत की लहरें उत्पन्न हुईं। वह तुरन्त एक दूसरे से पृथक हो गए।

दूसरे ही क्षण वह ध्वनि उनके द्वार से निकल कर सर-सराती हुई सीढ़ियों में समाप्त हो गई और वह मुस्करा कर एक दूसरे से लिपट गए। कुछ ही क्षण पश्चात् फिर किसी की पग-ध्वनि सुनाई दी। परन्तु इस बार वह बढ़ते हुए उनके द्वार के समीप आकर रुक गए। किसी ने धीरे से द्वार थपथपाया,

"कौन ?" सुरेन्द्र ने उन्मादी स्वर से पूछा।

"मैं हूं" सुरेन्द्र की पत्नी ने उत्तर दिया।

"आया"—और कहते २ सुरेन्द्र ने स्मरणा को बाजुओं में उठा कर दूसरे द्वार के समीप खड़ा कर दिया और आंख से भाग जाने का संकेत किया। फिर अपनी पत्नी के लिये द्वार खोलने को बढ़ा। कुण्डियां एक ही समय उतारीं। द्वार खोलने से पूर्व सुरेन्द्र ने आंखें घुमा कर सन्तोष कर लिया कि स्मरणा जा चुकी है।

अगले दिन प्रातः जब सुरेन्द्र जागा तो उसको अपनी चार-पाई पर एक हेयरपिन पड़ा मिला। उसने तुरन्त उसे उठा कर

अपनी जेब में रख लिया। उसकी पत्नी यदि इसे देख लेती तो सफाई पेश करना कठिन हो जाता।

लगभग दस बजे सुरेन्द्र की पत्नी ने उसकी कमला से भेंट करा दी गुलाब की कोमल सी शाखा लाल दुपट्टे में. लिपटी कमरे के अन्धेरे कोने में बैठी थी। समीप ही पानी के दो मटके रक्खे थे जिनके मुंह पर लाल धागे लपेटे हुए थे। इनके ऊपर मिट्टी का एक चौमुखा दीपक चमक रहा था। इन आठ लाटो की निश्चल शिखा इस नव-विकसित गुलाब के मुख को आलोकित कर रही थी। सुरेन्द्र सौन्दर्य की इस चित्ताकर्षक मूर्ति को इस रूमानी वातावरण में देख कर कांप उठा। उसे ऐसा लगा कि कमला के रूप में कोई पुष्प परी इन मौन दीपों के प्रकाश में स्नान कर रही है। प्रकृती सम्भवत: इस धीमें गुलाबी मुख को और भी अधिक चमकाने के लिये इन दीपों की चमक उधार लेकर उसके मुख पर सभी रही थी। सौन्दर्य और दीपक ! और उसने सोचा कि इस से अच्छी संगत कोई और भी हो सकता है। कवि लोग इन दोनों का मुकाबला करते रहे परन्तु कोई इन दोनों को एकत्र कर के देखता कि क्या सौन्दर्य टपकता है। उसे संदेह हुआ कि कमला कहीं गुलाब का फूल तो नहीं। परन्तु नहीं, इस लाल और सफेद मुख के नीचे यह पतला सा लम्बा सा नरम शरीर है। यह तो एक सुन्दर टहनी पर कमल खिल रहा है।

जी "नमस्ते" कमला ने अपनी बारीक आवाज में कहा और फिर स्वयं भी पास ही दरी परबैठ गई। कमरे में कुछ और भी लड़कियाँ थीं परन्तु वह सब अलग अपने में मस्त थीं।

"मैं आप के विवाह पर न पहुँच सकी। मुझे आज तक इस बात का बहुत दुःख है।" कमला ने मुख पर धीमी मुस्कान लाते हुए कहा।

"तो आप इतनी देर तक मुस्करा मुस्करा कर दुःखी ही होती रहीं।" सुरेन्द्र ने कटाक्ष किया।

"मुस्कान तो आपको देखकर आ गई।" कमला ने सादगी से कहा।

"जी हम पुरुष न हुए कार्टून हुए?"

और प्रयत्न के बावजूद कमला अपनी हंसी न रोक सकी। क्षण भर पश्चात ही उसने बात काटने की दृष्टि से कहा,

"आपने बहुत अच्छा किया कि आ गए।"

"जी हां हमने भूल की जो एक पत्र पर खिंचे चले आए।"

"भूल कैसे?"

"आप अपनी बहिन के विवाह पर क्यों नहीं आई थीं?"

"माता जी बीमार थीं अन्यथा मैं अवश्य आपके दर्शनों के लिए पहुंच जाती।"

"हमारे दर्शनों को छोड़िये। आप अपनी बहिन के लिए आतीं।"

"बहिन तो हर समय मेरे हृदय में बस्ती है।" कहते २ कमला ने अपने दोनों बाजू सुरेन्द्र की पत्नी के गले में डाल दिए।

"जी हां हम ही दिल से दूर हैं।" सुरेन्द्र ने विचित्र ढंग से कन्धे हिलाते हुए कहा।

"आप तो आते ही दिल में खुब गए।"

"कांटे की भाँति"

"अब बातों में आपसे कौन जीतेगा? कमला ने हार मानते कहा।

"हमको जीतने की क्या आवश्यकता है" सुरेन्द्र ने चंचलता से कहा, "अब सुसराल जाकर किसी का मन जीतिये।"

परन्तु जब उसने अपने उस चुभते वाक्य का प्रभाव देखने के लिए दृष्टि कमला के मुख पर डाली तो वह धक से रह गया।

वह लाल और श्वेत मुख जो क्षण भर पहले आठ दीप शिखाओं के प्रकाश से चमक रहा था, अत्यन्त पीला हो गया। वह चकित था कि एकाएक उस मुस्कराते हुए मुख पर मुर्दनी क्यों छाने लगी। उसके शब्दों में वह कौनसा विषैला बाण निहित था जिसने आते ही इस कुसुमित कली का कलेजा मसल दिया। इससे पूर्व कि वह कुछ समझ पाता कमला ने एक दीर्घ निःश्वास भरा और सिर सुरेन्द्र की पत्नी के कन्धे से लगा दिया।

"मैं ने कोई ऐसी बात तो नहीं कही जो आपको बुरी लगी हो ?" सुरेन्द्र ने हैरान होते हुए पूछा।

"जी नहीं" कमला ने मुरझाये हुए स्वर से कहा, "मेरा भाग्य ही ऐसा था।"

इससे पूर्व कि सुरेन्द्र कुछ और पूछता, उसकी पत्नी ने उसे मौन रखने का संकेत किया। कुछ देर इधर उधर की बेढंगी सी बातें हुईं। परन्तु अब सुरेन्द्र को वहाँ बैठना दूभर हो रहा था। अपने कमरे में पहुंचते ही उसने अपनी पत्नी से सब से पहला प्रश्न यह किया,

"यह कमला एकाएक ऐसे निराश क्यों हो गई ?"

"जिस लड़के से इसका विवाह हो रहा है, वह सुन्दर नहीं।"

और सुरेन्द्र को अपनी आँखों के आगे से एक पर्दा सा हटता महसूस हुआ। उसने अनुभव किया कि कमला को वह शब्द कह कर उसने एक अक्षम्य अपराध किया है। उसे अपने हृदय में कमला के लिए अपार सहानुभूति का भाव उठता हुआ महसूस हुआ। उसने सोचा कि क्या यह अत्याचार नहीं कि कमला सी कोमल कली एक जंगली के गले मढ़ दी जाए।

बेचारी !—जीवन के जिन अरमानों की कल्पना एक युवती अपने विवाह की कल्पना के साथ करती है, उन सब का गला इसके विवाह के पूर्व ही घोंट दिया गया परन्तु क्यों ? क्या इस लिए कि वह एक लड़की है और समाज अपनी इच्छानुसार उस पर अत्याचार कर सकता है। बेचारी कितनी चीखी चिल्लाई होगी और अंत में विवश हो कर चुप हो गई होगी। मौन होने के अतिरिक्त वह और कर ही क्या सकती थी। मैं पुरुष होकर समाज के इस अत्याचार को सहन कर गया। और वह तो स्त्री थी, क्या करती। उसने सोचा कि—वह और कमला एक ही नाव में सवार हैं और वह नाव समाज की लहरों पर बही चली जाती है। सहसा एक तूफान आता है, नाव के दो टुकड़े हो जाते हैं। फिर उन्हें एक दूसरे की सुद्ध नहीं रहती। उसे होश आता है। वह अपने आप को एक किनारे पर अपनी पत्नी की गोदी में पाता है। फटी २ आंखों से इधर उधर देखता है। एकाएक उसे कमला का चीत्कार सुनाई देता है। वह आंखें फाड़ कर उस ओर देखता है। उसे नदी के दूसरे तरफ कुरूप जंगली पुरुष दिखाई देता है जो कमला को अपने लौह सदृश पंजों में दबोच खैंचता ले जा रहा होता है। वह उससे छूट जाने के लिये संघर्ष करती और चिल्लाती है। वह नदी पार करके उस पार जाना चाहता है परन्तु उसकी पत्नी उसका बाजू पकड़ कर रोक लेती है—वह तिलमिला कर उसकी ओर देखता है तो वह मुस्करा कर कहती है,

"आज आप नहायेंगे नहीं क्या ?"

"नहाना—" और उसने अनुभव किया कि वह अपनी

पत्नी के साथ अभी उसी कमरे में बन्द है। उसने सम्भल कर कहा, हाँ, नहा लेता हूं।"

इस दिन सुरेन्द्र को नहाने में कुछ आनन्द न आया। प्रकृति भी सम्भवतः उसके विरुद्ध थी। दांतों के लिये ब्रुश मिला तो पेस्ट नहीं, साबुन मिला तो तौलिया गायब। और उसे पूर्ण विश्वास था कि वह सभी वस्तुएं अपने साथ लाया था। नहाने के पश्चात् कंघी और शीशे ने तो मिलने से ही इन्कार कर दिया। उसे याद आया कि उसने यह एक कमरे के सिंगार मेज़ पर सब वस्तुयें देखी थीं। वह धीरे २ उस कमरे तक पहुँच गया परन्तु कमरे में पग धरते ही ठिठक गया।

सिंगार मेज़ के पास एक बड़े शीशे के सामने खड़ी एक सुन्दरी अपने लम्बे २ घुंघराले बालों को संवार रही थी। सुरेन्द्र के कमरे में प्रविष्ट होते ही उसने पलट कर देखा और एक विचित्र विस्मय और कौतूहल से चिल्लाई,

"सुरेन्द्र! तुम——?——

कितनी उत्सुकता, प्रेम और उल्लास था इन दो शब्दों में। सुरेन्द्र सिर से पाँव तक कांप उठा। उसे ऐसा लगा कि वह फिर एक बार अपने ससुराल में बैठा है और दमयन्ती मधुर बातों से उसका मन बहला रही है। दमयन्ती हां——और उसने समझ लिया कि यह एक सुन्दर स्वप्न नहीं कि वह दमयन्ती जिसके मिलन की आकांक्षा निर्जन और सूनी रातों के रूखे वातावरण में भी उसकी भावनाओं को गरमाती रही है, एका-एक उसे इस कमरे में मिल जाए। उसने एक बार एक भरी हुई दृष्टि दमयन्ती के मुख पर डाली। साथ ही उसे ऐसा लगा कि किसी ने एक पैना छुरा उसके सीने में भोंक दिया है।

कुछ मिटे २ से चिन्ह, कुछ २ धुंधकली सी यादें जैसे पुराना हो जाने के कारण कोई चित्र टूट फूट गया हो उसे अपना सिर घूमता हुआ महसूस हुआ। उसे लगा कि दमयन्ती की वर्तमान दुरावस्था का उत्तरदायित्व उस पर है। वह एक ऐसा पापी है जिसका प्रत्येक पाप अक्षम्य है। वह कुछ क्षण और इस कमरे में रहा। इस बीच उसकी दमयन्ती से क्या २ बातें हुईं इसका उसको सर्वथा ज्ञान न था। हां जब वह वापिस अपने कमरे में आया तो उसने पूर्ण निश्चय कर लिया कि वह इस परीक्षात्मक वातावरण में से शीघ्रातिशीघ्र भाग जाएगा।

उसी दिन सायंकाल एक आवश्यक कार्य आ पड़ने का बहाना करके वह विवाह की भाग दौड़ में से चला आया। परन्तु मार्ग भर उसको यह विचार टूटे हुए स्वप्न की भाँति सताता रहा कि क्या वह पापी है और एक भोली भाली आत्मा के विनाश का दायित्व उस पर आता है ?

एक के पश्चात् एक, स्मरणा के उसे तीन पत्र मिले। इनमें उसने बिना मिले चले आने की शिकायत की थी। परन्तु सुरेन्द्र ने अच्छा यही समझा कि उसे कुछ उत्तर न दिया जाए।

आठवां परिच्छेद

कितने ही दिन बीत गए। इन दिनों में दमयन्ती की दुर्दशा की कल्पना सुरेन्द्र की आँखों में परलोक के भय की भाँति घूमती रही। वह सोचता कि क्या दमयन्ती के हार्दिक प्रेम को न समझ सकना उसका एक अक्षम्य अपराध नहीं। उसको इस बात का विस्मय था कि वह दमयन्ती के प्रेम को समझ क्यों न सका। वह इतना अदूरदर्शी कैसे हो गया कि दमयन्ती की प्रेम पूर्ण दृष्टि को उन बन्धन तोड़ रातों के रूमानी वातावरण में भी रस्मी और बनावटी प्रेम ही समझता रहा। वह उसकी मर्म-भेदी दृष्टि का उत्तर देने का साहस न कर सका। सहसा उसे वह समय याद आया जब ससुराल से लौटते हुए दमयन्ती ने अकेले में उसे कहा था—

"आप तो जाते ही हमको भूल जएंगे।" और उसने उत्तर दिया था,

"तुम्हें दमयन्ती ! तुम्हें कभी मैं भूल सकता हूँ ?"

"आप का क्या है ?"

"क्यों ?"

"इतने दिनों तक आप............"

और वह सोचता कि काश दमयन्ती अपने भावों को प्रकट करने में इतने संकोच से काम न लेती। काश कि वह स्वयं ही दमयन्ती को उसके भाव प्रकट करने के लिए विवश कर देता।

या कम से कम उसको अपने बाहु पाश में लेकर प्रेम ही प्रकट कर देता। परन्तु वह तो कुछ भी न कर सका, कायर, साहस विहीन और प्रेम भाव से सर्वथा अनभिज्ञ और वह सोचता कि उसने एक सुन्दरी के प्रेम की कद्र न करके एक अक्षम्य अपराध किया है। उसका अपराध दण्डनीय है। वह इसी योग्य है कि अकेला बैठ कर अपनी कायरता पर अश्रुपात किया करे। फिर वह रह रह कर चीख़ उठता। दफ्तर में उसके मन की यह दशा थी कि कुछ भी समय पर न कर सकता था। एक २ कार्य के लिये उसे बार २ कहना पड़ता। जब उसे कोई काम कभी बताया जाता तो चौंक सा उठता। ऐसा दिखाई देता था कि वह हर्ष और प्रसन्नता के संसार में से चलते २ बहुत दूर निकल गया हो।

इसी प्रकार दिन कट रहे थे कि एक दिन दफ्तर में सूचना पहुंची कि उच्चाधिकारी तीसरे दिन दफ्तर की जांच के लिए आ रहे हैं। अगले दिन प्रातः सुरेन्द्र को गाड़ी से लाहौर भेजा गया ताकि वह उनके आने से पूर्व फूलों के बड़े बड़े हार बनवा कर लाए। अचानक उसी गाड़ी से उसका एक प्रिय मित्र कृष्णलाल भी लाहौर जा रहा था। कृष्णलाल एक २५ वर्षीय नवयुवक था, रूपवान और मधुर भाषी। वह शेखू पुरा के धनी व्यापारियों में से था। सुरेन्द्र उससे काफी खुला हुआ था। उसने सुरेन्द्र को मुरझाया हुआ देखकर पूछा।

"सुरेन्द्र मित्र! तुम्हारे मुख पर आजकल बादल क्यों छाये रहते हैं?" "केवल बादल ही नहीं" सुरेन्द्र ने मुरझाई हुई आवाज़ में कहा, "यह घटाएं जब बरसती हैं तो उनके साथ मेरा हृदय और हृदय की सभी आकांक्षाओं का रक्त भी बहने लगता है।"

"डाक्टर इकबाल को पढ़ने का सौभाग्य सम्भवतः तुम्हें भी मिला है ?" कृष्णलाल ने उसकी निराशा पर हंसते हुए कहा !

"क्यों ?" सुरेन्द्र ने कृष्णलाल की ओर आश्चर्य से देखते हुए पूछा। कृष्णलाल ने उत्तर देने की बजाए अपने दर्द भरे स्वर में इकबाल का यह पद अलाप दिया,

"तर आंखें तो हो जाती हैं, पर क्या लज्जत इस रोने में।
जब खूने जिगर की आमेजश से अश्कप्याजी बन न सका।"

एक निराश मुस्कान सुरेन्द्र के मुख पर फैल गई। उसने और भी अधिक दुखित स्वर में कहा,

"तुम नहीं समझ सकोगे, कृष्ण !"

"तो समझा दो" कृष्णलाल ने स्पष्टता से कहा और इच्छा न रहते हुए भी सुरेन्द्र ने अपनी और दमयन्ती की प्रणय-कथा पूरी की पूरी सुना डाली। प्रीत के घावों से पीड़ित उसका हृदय सम्भवतः कोई आश्रय ढूंढ रहा था और चाहता था कि जब ही अवसर मिले तो उसके मनके अरमानों को कुचलने वाला बोझ तुरंत उतारे। इसीलिए कृष्णलाल की साधारण सी बात उसके लिए पर्याप्त थी। सब कुछ सुनने के पश्चात् कृष्ण लाल ने उसके साथ सहानुभूति प्रकट करने की बजाए फिर अट्टहास किया और हंसते २ कहा,

"तुम तो बुद्धू हो।"

"अर्थात् ?" सुरेन्द्र ने क्रुद्ध होते हुऐ कहा।

"क्रुद्ध क्यों होते हो ?" कृष्ण ने उसी प्रकार हंसते हुए कहा, "सत्य सदा कटु होता है।"

"मैं तुम्हारी बात नहीं समझा।" सुरेन्द्र ने फिर उसी ढंग से पूछा। "लाहौर पहुंच कर बताऊंगा।"

परन्तु सुरेन्द्र ने मन में निश्चय कर लिया कि लाहौर में वह ऐसे सहानुभूति-विहीन मनुष्य के पास कभी भी न ठहरेगा। उसने बेपरवाई से मुख खिड़की से बाहिर निकाल लिया और दृश्यों की रोचकता का आनन्द उठाने क प्रयत्न करने लगा। परन्तु वह रोचक दृश्यावली उसके मन में उठ रही निरन्तर लहरों को समोने में असमर्थ रही। गाड़ी के चलने की आवाज के साथ २ मन की आकांक्षाओं के कराहने की ध्वनि आती रही।

परन्तु लाहौर स्टेशन पर गाड़ी के ठहरते ही कृष्णलाल ने सुरेन्द्र का हैंडबेग स्वयं उठा लिया और उसे अपने साथ चलने के लिए इतना विवश किया कि सुरेन्द्र कुछ भी न कर सका।

कृष्णलाल यद्यपि महीने में कभी २ दो चार दिन के लिए लाहौर आ जाता था परन्तु उसने गवाल मण्डी में २५) प्रति मास पर एक छोटा सा परन्तु सुंदर मकान किराया पर ले रखा था। जब वह दोनों मकान पर पहुँचे और कृष्णलाल ने ताला खोला तो सुरेन्द्र ने देखा कि मकान धूलि से अटा पड़ा है। उसने कटाक्ष पूर्वक कहा,

"यहां कहीं भूत तो नहीं रहते।"

"भूत तो नहीं। हां, अभी २ परियां आएंगी और मकान साफ़ कर जाएंगी।" "तुम साढ़ी बांधने लगे हो क्या ?"

"चलो,, पहले वैस्टैण्ड पर चाय पिला लाऊं, फिर बात करूंगा।" चाय पीकर जब दोनों लौटे तो सुरेन्द्र यह देखकर चकित रह गया कि वही कमरा जो आध घण्टा पहले धूलि से भरा पड़ा था अब प्रातः समीर की भांति शुद्ध था। कृष्णलाल ने इसका विस्मय देखकर कहा,

"क्यों, है न जादू !"

"मान गए, मित्र !" सुरेन्द्र ने स्वीकृति दी और कहा, "परन्तु यह बताओ कि इसे साफ़ किसने किया ?"

"ठहरो, अभी बताता हूं" कहते २ कृष्ण ने गली की ओर खुलने वाली खिड़की को तीन बार जोर से थपथपाया। फिर खिड़की खोल दी। और स्वयं एक आराम कुर्सी लेकर खिड़की के समीप बैठ गया।

"क्यों, क्या भूत को बुला रहे हो ?" सुरेन्द्र ने हंसते हुए कहा।

"देखो, अभी भूत आता है या परी।"

"देखें भई, यह कैसे परी है, कहीं वह बात तो नहीं कि नाम बड़े दर्शन छोटे" और कृष्णलाल अपने गम्भीर स्वभाव के विपरीत मुस्करा दिया। क्षण भर के पश्चात् उसने संभलते हुए कहा, "लो, वह आगई।"

कृष्णलाल ने किसी को हाथ जोड़कर नमस्ते कही और फिर सुरेन्द्र को अपने पास आने का संकेत किया। सुरेन्द्र समीप आया तो उसने एक ओर संकेत किया।

सामने के मकान पर एक युवा लड़की खड़ी मुस्करा रही थी। सुरेन्द्र को देखते ही वह क्षण भर के लिए झिझकी। फिर संभल कर आंखों ही आंखों में कृष्णलाल से पूछने लगी कि यह कौन है। दोनों हाथ मुंह पर रखते हुए कृष्णलाल ने धीमे स्वर में कहा, "भाई"

इस पर वह लड़की आंखों ही आंखों में मुस्करा दी। सुरेन्द्र झिझक कर पीछे हट गया। कुछ क्षण कृष्णलाल उधर ताकता रहा। फिर सुरेन्द्र की ओर मुड़कर बोला,

"अरे बुद्धू, जो तुम्हारी तरह झिझकते हैं, उनकी सदा यही दशा होती है। निश्चिन्त होकर प्रीति सागर में कूद जाओ, अच्छे से अच्छा मोती स्वयं ही तुम्हारे हत्थे चढ़ जाएगा।"

सुरेन्द्र कृष्णलाल की यह राय सुनकर क्षुब्ध हो उठा। उसे विश्वास न होता था कि विलासिता में अंधा धुंध कूद जाना प्रेम कहला सकता है। यह तो वासना तृप्ति के अतिरिक्त कुछ भी नहीं और दमयन्ती से वासना तृप्ति का ध्यान उसे आज तक न आया था। वह तो चाहता था—और वह सोचने लगा कि वह क्या चाहता था। परन्तु बहुत विचार करने के पश्चात् वह केवल इतना भर समझ सका कि दमयन्ती के प्रति जो भावना उसके मन में है उसकी विवेचना करने में वह स्वयं भी असमर्थ है।

कृष्ण उसको इस प्रकार चकित देख ठहाका मार कर कहने लगा, "बस, पड़ गए चक्कर में। आओ अब चलें। सायं-काल तुम्हें इस लड़की से गाना सुनवायेंगे। भगवान् की कसम, ऐसा नाचती है कि······" "परन्तु मुझे तो माड़ी इण्डस से वापिस लौटना है।"

"ओह, देखा जाएगा।" कृष्णलाल ने मुस्कराते हुए कहा।

"न, न, यह न हो सकेगा।" सुरेन्द्र ने इन्कार में सिर हिलाते हुए कहा।

× × × × × × ×

सायंकाल माड़ी इण्डस पर इण्टर के कम्पार्टमेंण्ट में हारों की टोकरी और अपना बैग रखे सुरेन्द्र जब प्लेट फार्म पर टहल रहा था तो उसे ध्यान आ रहा था कि कृष्ण लाल का निमन्त्रण अस्वीकार करके उसने भूल तो नहीं की। यदि वह रात भर

वहाँ रह कर प्रातःकाल गाड़ी से शेखुपुरे पहुँच जाता तो क्या आपत्ति थी। जिन अधिकारियों ने आना था, उनके पहुंचने से पूर्व तो वह पहुँच ही जाता। परन्तु फिर उसे ध्यान आता कि स्थानीय अधिकारी पहले उसकी ला परवाही के कारण रुष्ट हैं। उन्हें शिकायत का और अवसर देना बुद्धि संगत नहीं। वह इसी उलझन में प्लेट फार्म पर टहलता रहा। साढ़े आठ बज गए। इंजन ने सीटी बजाई और गाड़ी धीरे २ चलने लगी। सुरेन्द्र लपक कर अपने कम्पार्टमेंण्ट में चला गया। कमरा में जाकर उसने देखा कि जिस कमरे में वह केवल एक दो ही यात्री छोड़ कर गया था, अब वह खचाखच भरा है। उस ने अपनी सीट देखी तो उसके सामान के पास एक वृद्धा बैठी है और दूसरी ओर दो युवतियां। उसके लिए तो कमरे में बैठने का भी स्थान न था। विवश हो कर उसने सामान सीट के नीचे रख दिया और स्वयं सीट पर बैठ गया। उसने कमरे में चारों ओर पैनी दृष्टि डाली जो लौटती हुई क्षण भर के लिए इन लड़कियों के समीप रुकी और फिर नीचे झुक गई। उसने अनुभव किया कि उसके साथ बैठी हुई लड़की यद्यपि पर्याप्त रूपवती है तो भी उसकी साथिन और भी अधिक सुदंर छवि रखती है। अभी वह मन ही मन इन दोनों के चेहरे-मोहरे को मिला रहा था कि उस छबीली ने सुरेन्द्र के पास वाली लड़की से कहा,

"बहन तुम यदि थोड़ा इस ओर हो जाओ तो मैं लेट जाऊं।"

सामान उठ जाने से स्थान कुछ और हो गया था परन्तु इतना नहीं कि कोई लेट सकेगी। वह चकित था कि यह लड़की यहाँ कैसे लेट सकेगी। सामने से एक गठीले युवक सरदार ने सुरेन्द्र के साथ वाली लड़की से पूछा,

"अजीत, क्या कहती है तुम्हारी भाभी ?"

"भाभी लेटना चाहती है।"

"तो लेट जाने दो। तुम आ जाओ इधर, मेरे पास।" और उसने अपने साथ अधेड़ सरदार से कहा, "बाबा, तुम थोड़ा उधर सरक जाओ, मैं भी उधर सरक जाता हूँ। अजीत के लिए स्थान हो जायेगा।"

अजीत उठ कर सामने वाली सीट पर चली गई तो सुरेन्द्र ने समझ लिया कि अजीत उस सरदार की बहन है, वह अधेड़ सरदार उन का पिता है और वह छबीली उस युवक सरदार की पत्नी। उस ने एक पैनी दृष्टि उस गठीले शरीर वाले सरदार पर डाली और उस की रक्त रंजित आंखें देख कर कांप उठा।

एकाएक उसे अपने दाहिने हाथ पर बोझ सा अनुभव हुआ। उस ने पलट कर देखा कि वह तीखे अंगों वाली लड़की उसके हाथ को तकिया बनाए आनन्द पूर्वक लेट रही है। उस की आंखों के सामने युवक सरदार के रक्त पूर्ण नेत्र घूम गए। उस ने विचार किया कि आज दुर्भाग्य उसे इस कमरे में ले आया। उस ने चाहा कि अपना हाथ खींच ले परन्तु फिर यह सोच कर कि यह लड़की सम्भवतः यह नहीं जानती कि उसका हाथ उस के सिर के नीचे है और हाथ खींचने से बात उल्टी हो जाए, हाथ न खींचा। इस दशा में हाथ रखे रखने में भी भय था। यदि सरदार ने देख लिया तो अच्छा न होगा। एक कम्पित दृष्टि उस सरदार पर डाली। वह ऊंघ रहा था।

गाड़ी रात्रि के मौन में भयानक सनसनी पैदा करती हुई तीव्र गति से जा रही थी। सुरेन्द्र का हृदय भी उसी गति से धड़क रहा था सहसा इस तीखे अंगों वाली लड़की ने करवट

ली और मुख खिड़की की ओर कर लिया। सुरेन्द्र ने तुरन्त अपना हाथ सरका लिया और उसे खिड़की से बाहर निकाल कर दूसरी खिड़की के फ्रेम में शीशे और तख्तों वाले चौखटों पर रख दिया।

क्षण भरके पश्चात उस लड़की का सिर सरकता हुआ सुरेन्द्र के घुटने से आ मिला। सुरेन्द्र मन ही मन कांप उठा वह उस नई आपत्ति से बचने का उपाय सोच ही रहा था कि उस लड़की के शरीर में कुछ हलचल हुई और अगले ही क्षण उस का कोमल हाथ खिड़की में सुरेन्द्र के हाथ के ऊपर था। सुरेन्द्र की आत्मा तक कांप उठी। उसने झिझकते हुए फिर एक बार युवक सरदार की ओर देखा। उसे ऊंघता देखकर उसने शान्ति का स्वास भरा।

उन कोमल अंगुलियों का बोझ उसके हाथ पर बढ़ता गया। सुरेन्द्र को अनुभव हुआ कि यह सब कुछ अनजाने में नहीं हो सकता। परन्तु यह विश्वास करने का साहस भी न होता था कि यह कोमल लड़की अपने पति, श्वसुर और ननद की उपस्थिति में इतना खुल जाने का साहस कर सकती है।

एक बार उसे कृष्ण लाल के वह शब्द याद आए:—

"अरे बुद्धू, जो तुम्हारी तरह झिझकते हैं उनकी सदा यही दशा होती है। बिना झिझक प्रेम सागर में कूद जाओ सर्वोत्तम रत्न तुम्हारे हाथ लग जाएगा"

और उस ने बिना विचार किए अपने हाथ की छोटी अंगुली से उस सुप्त सुंदरी के हाथ की छोटी अंगुली को दबा दिया पर तुरन्त ही कृष्ण लाल के शब्दों का जादू उड़ गया। परिणाम की कल्पना करते ही वह अपने आप को इस दुस्साहस के लिए कोसने लगा।

परन्तु जब अगले ही क्षण उस कोमल छोटी अंगुली ने सुरेन्द्र की छोटी अंगुली को उसी प्रकार दबाया तो वह सोचने लगा कि उसे अपने साहस पर प्रसन्न होना चाहिए या दुखी। परन्तु इस प्रोत्साहन के बावजूद उसने अपना हाथ शीघ्रता से खैंच लिया और उसको खिड़की से बाहिर लटका रहने दिया । उसी समय उस लड़की का हाथ भी खिड़की से बाहिर लटकने लगा।

सुरेन्द्र अब तक भी यह समझने में असमर्थ है कि सरदार साहिब का इतना भय होने पर भी किस प्रकार उसका हाथ खिड़की से बाहिर सरकते २ उस सुन्दरी के हाथों तक पहुंच गया। और वस्तुस्थिति यह है कि कुछ ही क्षणों में वह सुन्दर और प्रिय हाथ उसके हाथों में था और वह उसे धीरे २ दबा रहा था ।
शीघ्र ही उसे महसूस हुआ कि वह सुन्दरी अपना हाथ खैंच रही है। उसने भयभीत होकर उसका हाथ छोड़ दिया और अपने स्थान पर सचेत हो कर बैठ गया। फिर उसी समय उन कोमल अंगुलियों ने बढ़ कर उसके हाथ को अपने हाथ में पकड़ लिया और प्रेम पूर्वक इसे तीन बार दबाया। सुरेन्द्र मन ही मन उन कोमल अंगुलियों के बोझ से झूम उठा।

गाड़ी उड़ी जा रही थी । अब स्थिति यह थी कि जब स्टेशन आता तो यह दोनों अलग २ हो जाते और गाड़ी चलती तो कोई विद्युत शक्ति इनको मिला देती।

गाड़ी चीचो की मल्लियां से चली तो सुरेन्द्र को ध्यान आया कि इस स्वप्न सुन्दर सुन्दरी से उसके प्रणय का यही आरम्भ और यही अन्त है । अगले स्टेशन पर वह उतर

जाएगा और यह सुन्दरी अज्ञात अन्धकार में लुप्त हो जाएगी। ऐसा क्यों है ? यदि इसका उसके जीवन से कोई सम्बन्ध न था तो उसको क्यों इतनी निर्दयता से उसके मार्ग में डाला गया। क्या कभी वह इन कोमल अंगुलियों के मधुर बोझ को भुला सकता है। यदि नहीं तो क्या यह अत्याचार नहीं कि क्षण भर के उपरान्त वह सुन्दरी उसके लिये एक स्वप्न से अधिक कुछ न रहेगी ? ऐसा भी क्यों ? उसके भाग्य में यह केवल कोमल स्पर्श क्यों बदा है ? वह इन स्वच्छ और कोमल अंगुलियों को उत्सुकता पूर्वक चूम क्यों नहीं सकता ? एकाएक उसे ध्यान आया कि इतना तो वह अब भी कर सकता है। उसने सिर को खिड़की के बाहिर झुका दिया और उसकी अंगुलियों को खैंचते हुए अपने होठों से लगा लिया।

एकाएक इंजन की सीटी बजी। सुरेन्द्र ने देखा कि गाड़ी का इंजन शेखूपुरा स्टेशन की सीमा में प्रविष्ट हो रहा है। उसने शीघ्रता से उन लम्बी कोमल अंगुलियों का एक और चुम्बन लिया और फिर मध्यमा अंगुली को धीरे से दाँतों से दबा कर छोड़ दिया।

स्टेशन आया तो सुरेन्द्र ने किसी कुली को बुलाए बिना स्वयं ही एक हाथ में हैण्ड बैग उठाया और दूसरे में फूलों की टोकरी लेकर निराश नेत्रों से उस कामिनी को ताकता हुआ गाड़ी से नीचे उतर गया। प्लेट फार्म पर उतर कर उसने उस डिब्बे के सामने ही अपना सामान रख दिया और गाड़ी के चलने की प्रतीक्षा करने लगा। वह कोमलांगी भी सिर खिड़की से बाहिर निकाल कर उसकी ओर टिकटिकी लगा कर देखने लगी। एक बार उसे ध्यान आया कि उसके खिड़की से बाहिर लटकते हुए हाथ को दबाये। ध्यान आते ही वह कौतूहल पूर्वक

आगे बढ़ा। परन्तु वह सुन्दरी इसे बढ़ता देख घबरा कर पीछे हट गई और उसने अपना हाथ भी खैंच लिया। वह इस घबराहट का अर्थ कुछ न समझ सका। परन्तु अब वह खिड़की के समीप पहुंच चुका था। इसलिए उसने आगे बढ़ कर अपनी सीट को इस ढंग से देखा मानों कोई वस्तु भूल गया हो। परन्तु वहां कुछ भूला होता तो मिलता। परन्तु उसने कनखियों से सामने वाले बैंच पर आंखें खोले बैठे देखा। वह उस सुन्दरी की घबराहट का कारण समझ गया। सिर खिड़की से बाहिर निकाल कर वह फिर अपने स्थान पर आकर खड़ा हो गया। अब उसे भय था कि वह छबीली खिड़की से बाहिर तक झांकने का साहस न करेगी परन्तु क्षण भर के पश्चात् उसने देखा कि उस सुन्दरी का मनमोहक मुख उन्मादकारी दृष्टि के साथ उसकी ओर झांक रहा था। इतने में गाड़ी चल दी। उसने दाहिने हाथ की दो अंगुलियाँ होंठों से लगा कर एक चुम्बन उसकी ओर लहरा दिया। उसने देखा कि उसकी भी दो अंगुलियाँ होठों तक पहुंच गईं। फिर आगे बढ़ती हुई अन्धकार में लुप्त हो गई।

(२)

दमयन्ती के याद आने का कारण समझ में आता था। परन्तु इस अज्ञात सुन्दरी की कल्पना मात्र से सुरेन्द्र को अपने सीने में एक चुभन सी अनुभव होती। वह चकित था कि ऐसी भावना पूर्ण भेंट में भी वह एक दूसरे के नाम तक न जान सके। उसका पता और रहने का स्थान जानने का तो प्रश्न ही नहीं उठता। मजे की बात तो यह थी कि उस मधु से भी अधिक मधुर अंगुलियों वाली ने भी उसका नाम पूछने का प्रयत्न

न किया। वह एक प्राणदायक समीर की भांति उसके जीवन में आई और उसके शरीर से टकराती, उसकी आँखों से अठखेलियां करती और उसके सीने में झंझावात उठाती उसके स्वप्नों के संसार में अन्य धुंधले चित्रों की भांति समा गई। वह सोचता कि जीवन के तूफानी क्षणों में यदि उस ने फेन वाली लहरों की भांति हृदय तट से टकरा कर लुप्त हो जाना था तो वह उसके जीवन में आई ही क्यों? क्या उसके जीवन में इससे पहले निराशा की कुछ कमी थी जो उसने एक और वृद्धि कर दी। फिर उसको कृष्ण लाल के शब्द स्मरण होते और वह सोचने लगता कि यदि वह कृष्ण लाल के शब्दों से प्रोत्साहित होकर उसकी अंगुली को दबाने का दुस्साहस न करता तो क्या वह इस परीक्षात्मक चुभन से बच न रहता। परन्तु कैसे? उसके भाग्य में ही दुःख के आघात सहन करना लिखा था तो वह उनसे बचता कैसे?—फिर वह अपने भाग्य को कोसने लगता।

इसी प्रकार भाग्य को कोसते २ कई मास बीत गए। एक दिन फिर उसे विवाह का निमन्त्रण मिला। दमयन्ती के चचा के लड़के का विवाह था। उसके सीने में एक तरंग सी उठी। उसने सोचा कि क्या दमयन्ती से एक बार फिर मिलकर इस चुभन का जो इसे अज्ञात संताप की नाईं संतप्त रखती है अंत कर देना अच्छा न होगा। और क्या यह सम्भव नहीं की वह दमयन्ती को अपनी वह भूल बतादे जो उसने उसके हार्दिक प्रेम को समझने में की थी और फिर उस भूल का प्रतिशोध भी करदे। उसका मन गवाही देता कि ऐसा होना सम्भव है। काश कि ऐसा हो सके।

घोर प्रयत्न पूवक उसने पांच दिन कि छुट्टी ली और पहली ही गाड़ी से संघोई को चल पड़ा। शाहदरा बाग स्टेशन पर उसे

झेलम जाने वाली गाड़ी का प्रतीक्षा करनी पड़ी। वह एक बैंच पर बैठ गया और अटैची केस से एक पुस्तक निकाल कर पढ़ने लगा। इतने में नारोवाल जाने वाली गाड़ी आई। सुरेन्द्र को लघुशंका हुई। उसने इधर उधर देखा कि किसी को अटैची केस का ध्यान रखने के लिए कह कर जा सके। बैंच के पास ही एक स्त्री धानी रंग का सूट पहने अपने ट्रंक पर बैठी थी। उसका मुंह सुरेन्द्र के बैन्च की ओर ही था। सुरेन्द्र ने सोचा कि उसके रहते हुए कोई अटैची केस को न छेड़ेगा। अतः वह किसी को कुछ कहे बिना ही लघुशंका के लिए एक सैकण्ड क्लास के डिब्बे में चला गया। दो ही क्षण के पश्चात वह लौटा तो उसने देखा कि वह स्त्री उसके स्थान पर बैठी बड़ी गम्भीरता से अटैची केस की छान-बीन कर रही है। वह उस स्त्री की धृष्टता पर आश्चर्य चकित रह गया और तेज २ पग बढ़ा कर बैन्च के समीप पहुँच गया। वह स्त्री इसे इतना शीघ्र लौटते देख कर पीछे हट गई। सुरेन्द्र ने तीव्र दृष्टि से उसकी ओर देखते हुए कटाक्ष पूर्ण स्वर में कहा,

"आप रुक क्यों गईं ? अभी तो आधी वस्तुएं अटैची केस ही में पड़ी हैं।"

"जी मैं तो.........."और इससे आगे वह स्त्री कुछ न कह सकी।

"जी आप तो.........कहिये न। चुप क्यों हो गईं ?" सुरेन्द्र ने फिर उसी ढंग से पूछा।

और उस स्त्री ने ऐसा बेहूदा बहाना किया जो केवल स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। उसने कहा,

"जी मैं ने तो ऐसे ही ताले को हाथ लगाया और यह अपने आप खुल गया।"

"और यह कपड़े, यह पुस्तकें, यह क्रीम की डिबिया, यह सब बाहिर कैसे आ गए ?" सुरेन्द्र ने कटु स्वर से पूछा।

परन्तु स्त्री के पास इसका कुछ उत्तर होता तो देती। वह मौन रही। इससे सुरेन्द्र का क्रोध और भी भड़क उठा। उसने कटुतर शब्दों में कहा,

"आप बोलेंगी या बुलाऊं पुलिस को ?"

पुलिस का नाम सुनते ही उस स्त्री की आत्मा कांप उठी। उसका रंग सूखे पत्ते की भाँति पीला हो गया। उसने थर-थर कांपते हुए हाथ जोड़ कर कहा,

"मुझे क्षमा कर दीजिए।"

"क्षमा कर दूं ! क्यों ?" सुरेन्द्र ने क्रोध से कांपते हुए कहा, "यह अटैचो केस क्या तुम्हारे बाप का था जो इसे खोलने बैठ गई ?"

"धीरे बोलिये।" उस स्त्री ने गिड़गिड़ा कर सुरेन्द्र के पाँव पकड़ते हुए कहा। परन्तु अब बहुत देर हो चुकी थी क्योंकि सुरेन्द्र की तीखी और क्रोध पूर्ण आवाज ने पहले ही बहुत से लोगों को अपनी ओर आकृष्ट कर लिया था और वे आस पास एकत्र होने लगे थे। बात जान कर प्रत्येक अपना २ मत देने लगा। किसी ने कहा 'इसे पुलिस के हवाले कर दो', और किसी ने क्षमा कर देने की सिफारिश की। एक ने सब से पहले अटैचीकेस की वस्तुएं गिन लेने का परामर्श दिया। सुरेन्द्र के मन को यह बात पसंद आई और वह अपनी याद के अनुसार वस्तुएं गिनने लगा।

सुरेन्द्र वस्तुएं गिन रहा था और वह स्त्री लज्जवश भूमि सात हो रही थी। गिन चुकने के पश्चात् सुरेन्द्र ने एक तीव्र दृष्टि

उसकी ओर डाली । उसकी दुर्दशा और लज्जा को देखकर उसने अनुभव किया कि उस को पर्याप्त दण्ड मिल चुका है। अतः अधिक बात बढ़ाने के बजाए उसने दृष्टि फेर ली और फिर पुस्तक पढ़ने लग गया। सुरेन्द्र को इस प्रकार अध्ययन करते देख कर भीड़ भी छटने लगी और क्षण भर में जो जिधर से आया था उसी ओर लौट गया। जब आस पास कोई न रहा तो वह स्त्री सुरेन्द्र के समीप सरक आई और कहने लगी,

"आप ने मुझ पर बहुत कृपा की।"

"हूं"सुरेन्द्र ने अवहेलना पूर्वक उत्तर दिया।

"आप मुझे पुलिस के हवाले कर देते तो मैं कहीं की न रहती।"

"अब तो बच गई न!" सुरेन्द्र ने शुष्कता से कहा, "फिर अब क्या चाहती हो?"

"आप मुझे साथ ले चलें।"

"सुरेन्द्र उस के यह शब्द सुनकर निस्तब्ध रह गया।

"क्या कहती हो?" उसने विस्मित नेत्रों से उस की ओर देखते हुए कहा

"मैं आप की कुछ सेवा करना चाहती हूं।"

"अटैची केस में से कुछ चाहिये?"

"आप का दिया बहुत कुछ है।"

"फिर मुझ पर दया कीजिए।"

"आप ही मुझ पर कृपा करें और सेवा का अवसर दें।"

"मुझे क्षमा करो, बाबा।" सुरेन्द्र ने कटु स्वर में कहा और अटैची केस उठा कर दूसरी ओर चल दिया।

सुरेन्द्र को आश्चर्य था कि यह कैसी स्त्री है कि अकारण गले पड़ने को तैय्यार हो रही है। साहस देखो। कैसे धैर्य से अटैची केस की छान बीन कर रही थी मानो यह उसी का माल हो। वह सोचने लगा कि आज तक पुरुषों को स्त्रियों की वस्तुओं पर हाथ साफ करते देखा था परन्तु यह दुस्साहस स्त्रियों में देखने में न मिला था। वास्तव में ही संसार बदल रहा है। उसने सोचा कि वह समय तो समीप नहीं आ रहा जब पुरुषों को घूंघट निकाल कर चूल्हा जलाना पड़ेगा और स्त्रियाँ बाजारों और गलियों में दनदनाती फिरेंगी। उसे 'उल्टी गंगा' चित्र स्मरण हो आया। मन दुखी होने के बावजूद वह मुस्करा दिया। सोचने लगा प्रेमप्रदर्शन का ढंग भी निराला ही है। "मैं आप की सेवा करना चाहती हूं" परन्तु तुम्हारी सेवा की आवश्यकता किस अभागे को है? मुझे क्या अपनी प्राण रक्षा नहीं करनी जो तुम से उलझूं?

अपने विचारों में मग्न वह दूसरी ओर से आते हुए एक मोटे आदमी से टकरा गया। 'क्षमा करना' दोनों ने इकट्ठे ही मुस्कराते हुए कहा। यह टक्कर भी मानो जीवन की कोई मनोरंजक घटना हो। वह सोचने लगा कि हमारी सभ्यता भी बड़ी हास्यास्पद है। आप बेपरवाई से हजामत का पानी खिड़की से बाहिर फेंकते हैं। वह एक सज्जन के कपड़ों पर गिरता है। वह क्रुद्ध होकर आप की ओर देखता है। आप तुरन्त गम्भीरता से कह देते हैं 'क्षमा करना'। और यह शब्द पुनः उसे सभ्य बनाने के लिए पर्याप्त होते हैं। वह मुस्करा कर कहता है 'जो कोई बात नहीं"। और आपने यदि पहले शब्द न कहे होते तो सम्भवतः वह आप का रक्त बहाने पर तुल जाता।

एकाएक इंजन की सीटी ने उसे चौंका दिया। गाड़ी स्टेशन की सीमा में प्रविष्ट हो चुकी थी।

प्रातः काल लग भग ४ बजे गाड़ी झेलम स्टेशन पर पहुँची। आकाश मेघाच्छादित था और फुवार पड़ रही थी। सुरेन्द्र ने शेष रात्रि वेटिंग रूम में ही बिताना उचित समझा और सोचा कि दिन निकलते ही ताँगा लेकर संघोई चल देगा।

परन्तु दिन निकलते ही बादल घिर आये और धारा प्रवाह वर्षा होने लगी। आठ बजे के लग भग वर्षा का जोर कुछ कम हुआ और सुरेन्द्र संघोई की ओर चल दिया परन्तु छावनी लांघते २ वर्षा फिर शुरू हो गई और चुंगी के समीप पहुँचे तो वर्षा झंझावात का रूप धारण कर चुकी थी। सुरेन्द्र ने ताँगा छोड़ कर कुछ देर तक चुंगी के दफ्तर में ठहर जाना ही उचित समझा। वहाँ संघोई जाने वाले कुछ और लोग भी वर्षा रुकने की प्रतीक्षा कर रहे थे। बातों २ में उसे पता लगा कि इन में से ऐसे भी हैं जो विवाह के सिलसिले में शहर से कुछ आवश्यक सामग्री खरीदने आए थे। उस ने उन के साथ को ही अच्छा समझा। अब वह एक से तीन हो गये थे। बड़ी कठिनता से वर्षा थमी परन्तु तांगे वालों ने आगे जाने से इन्कार कर दिया क्योंकि इस से आगे सड़क कच्ची थी और कच्ची सड़क पर तांगे को ले जाना बड़े जोखिम का काम था। अतः निश्चय हुआ कि शहर को वापस लौटा जाए और किसी होटल आदि में खाना खा कर दोपहर के बाद चला जाए। तीनों लौट गए परन्तु खाना खाते-खाते बादल फिर आ गए और हल्की-हल्की बूंदें बरसने लगीं। इस के दोनों साथी घनघोर घटायें देख कर

साहस छोड़ बैठे परन्तु सुरेन्द्र के साहस को दमयन्ती की कल्पना उकसा रही थी । उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि चाहे मृत्यु के मुख में ही क्यों न जाना पड़े वह वहाँ पहुंच कर दमयन्ती से अवश्य मिलेगा। उसी समय तांगा लेकर बूंदा-बांदी की चिंता किए बिना चल पड़ा। उसके साहस से अन्य यात्रियों को भी प्रोत्साहन मिला और वे भी उसके साथ जाने को तैय्यार हो गए। दुर्भाग्यवश चुंगी तक पहुंचते २ वर्षा फिर तेज़ हो गई और एक बार फिर चुंगी के दफ्तर में वर्षा थमने की प्रतीक्षा करनी पड़ी । वर्षा रुकी परन्तु तांगे का आगे जाना असम्भव था । साथियों ने वापस लौटने की सूझ दी परन्तु सुरेन्द्र हठ का पक्का था, पैदल चलने की ठान ली । साथियों ने उसे समझा बुझाकर रोकने की चेष्टा की। उसे बताया कि मार्ग में एक बरसाती नाला पड़ता है जिसमें वर्षा के कारण बाढ़ आई होगी, इस पर वहाँ पुल कोई नहीं अतः इस तूफानी अवस्था में उस के अन्दर कूद जाना मृत्यु के मुख में कूद जाने के समान है। परन्तु सुरेन्द्र तो इस के लिये तैय्यार था । उस ने उन की बात सुनी अनसुनी कर दी। जुराबें पतलून के ऊपर चढ़ाईं और अटैची केस व छड़ी हाथ में लेकर आगे बढ़ा। उस के इस साहस का प्रभाव पड़ा और वह भी चल पड़े । कच्ची सड़कें ऊबड़ खाबड़ होने के कारण वैसे ही मुसीबत होती है, वर्षा ने उन को और भी खराब कर दिया था । स्थान २ पर पानी रुक जाने के कारण कीचड़ और पानी की छोटी २ सी दलदलें बन गईं थीं। पग-पग पर यह भय होता था कि अब पांव फिसला और अब सूट पर कीचड़ का पलस्तर फिरा और अटैची केस की दुर्गत बनी। कई स्थानों पर पांव फिसलते २ बचा परन्तु इस वीर ने रुकने का नाम न लिया। नए सूट कीचड़ से

लत पत हो गए, जुराबों पर छींटों से कोढ़ फूट पड़ा। परन्तु वह सम्भव यथ्या कीचड़ और पानी से बचता, अपने भाग्य की भाँति बल खाता हुआ आगे बढ़ता गया। मार्ग में मिलने वालों से उसने मार्ग की दशा पूछी, सबसे उत्साह भंग करने वाला उत्तर मिला परन्तु उसने साहस न छोड़ा। नौगराँ के समीप पहुंच कर उसे ज्ञात हुआ कि नाले में पानी बहुत तेज़ हो चुका है। वह फिर भी आगे बढ़ता गया। नाले के निकट पहुंचते २ पता लगा कि उसका बान्ध टूट गया है और पानी तेज़ी से नौगराँ की ओर बढ़ रहा है। वह और उसके साथी नाले के किनारे एक ऊंचे स्थान पर खड़े हो गए। उनसे पहिले भी वहाँ कुछ लोग नाले के पानी की तेजी और अपनी विवशता को देख रहे थे। उधर बांध टूट जाने के कारण नौगराँ की पिछली ओर भी पानी ही पानी था जो अपनी कम्पन जनक सनसनी के साथ टीलों और गढ़ों को समतल करता जा रहा था। सुरेन्द्र ने नाले पर दृष्टि डाली तो उसकी तेज़ गति देख कर इसका भी हृदय काँप उठा। पानी विद्युत गति से बह रहा था। सुरेन्द्र ने सोचा कि आज सम्भवतः भूमि आकाश बन जाएगी अन्यथा एक छोटे से पहाड़ी बरसाती नाले में ऐसी तीव्रता कैसे आ सकती है। लहरें थीं कि तीन २ फुट ऊंची उठ रही थीं। और एक लहर दूसरी के पीछे इस प्रकार जाती थी मानों कोई अज्ञात आकर्षण वायु वेग से उसे अपनी ओर खैंच रहा हो। लहरों का सिलसिला अनंत था जो लगभग एक मील के विस्तार में किसी भी पादाक्रान्त आकाँक्षा की भांति सिर पटक रहा था। सुरेन्द्र को महसूस हुआ कि लहरों के चीत्कार में उसकी आशाएं कराह रही हैं। उसको लगा कि प्रकृति की

समस्त निर्दयी शक्तियां उसके निश्चयों के सम्मुख आकर खड़ी हुई हैं। उसे अपना सिर चकराता हुआ महसूस हुआ। उसने सोचा कि मेरे भाग्य में यही बदा है कि मेरी आशाएं सिर पटक २ कर समाप्त हो जाएं। इसके अतिरिक्त उसके दृढ़ निश्चयों के सामने यह खाड़ियां खोदने का प्रकृति का क्या आशय था। निर्दयी प्रकृति प्रत्येक साहसी मनुष्य के सम्मुख कठिनाइयों की भीत खड़ी कर देती है। न जाने विवश मनुष्यों को तड़पाने में उसे क्या आनन्द मिलता है। उसने एक प्रति-कार पूर्ण दृष्टि नाले की उमड़ती हुई लहरों पर डाली। इनमें उसे महा साहसी मनुष्यों की तड़पती हुई लाशें दृष्टि गत हुईं, हां तड़पती हुई क्योंकि मर जाने के पश्चात् भी उनकी अधूरी आकांक्षाएं अभी तक तड़प रही थीं। उसने सोचा कि उसे भी आज इनमें एक और लाश की वृद्धि करनी होगी। अपने साहस के बावजूद उसने एक लम्बा श्वास लिया। वह दमयन्ती से प्रेम प्रकट करने के पश्चात मरना चाहता था। परन्तु समय से पूर्व इस प्रकार मरना उसे अखरा। उसने चहुं ओर निराश नेत्रों से देखा। कुछ लोग एक बुढ़िया से खजूरें खरीद कर खा रहे थे। कुछ आपस में बातें कर रहे थे। अन्य सभी नाले की लहरों के उतार चढ़ाव पर वाक्य विन्यास कर रहे थे। परन्तु ऐसा कोई भी न था जो नाले को पार करने के लिये उत्सुक दिखाई देता हो। किनारे पर इसी बस्ती के कुछ नंग धड़ंगे लोग भी थे जो नाले की लहरों से आनन्द प्राप्त कर रहे थे। वह बार २ नाले में कूदते और तैरते हुए लहरों के पास आ पहुंचते। फिर बड़ी निश्चिन्तता से हाथ मारते हुए लौट आते थे। सुरेन्द्र को इनसे ईर्ष्या होने लगी। वह सोचने लगा कि अच्छा होता यदि उसने कपड़े न पहिने होते। वह भी इन नंगे धड़ंगे लोगों की

भाँति निश्चिन्त हो कर उस पार पहुंच जाता। फिर उसने सोचा कि उस प्रकार संघोई पहुंच कर क्या करता। गाँव के कुत्ते ही उसे गांव में न घुसने देते। वह सोचने लगा रूपवती नारियों के साथ यह कुत्ते कहाँ से आ टपकते हैं ? वह लैला का कुत्ता मजनूं को काटता तो न था। परन्तु यह संघोई के कुत्ते। उसने सोचा कि काश वह मजनूं के युग में जन्म लेता। उसे कम से कम कुत्तों से काटे जाने का भय तो न रहता। एकाएक उसे कसौली की याद आई। कल्पना ही कल्पना में उसने देखा कि एक डाक्डर रूपी मनुष्य उसके पेट में टीका भोंक रहा है। वह भय से कांप उठा। सोचा कि मैं भी विचित्र व्यक्ति हूँ संघोई पहुंचते २ कसौली जा पहुंचा। भला संघोई का कसौली से क्या सम्बन्ध हो सकता है।

"वौह, वौह,——उस के पास ही एक कुत्ता जोर से भौंका। उस ने सोचा कि क्षण भर में यह कुत्ता उसे काट खाएगा और वह फिर कसौली और डाक्टर की कल्पना में उलझ कर वहां बैठ गया। परन्तु जब उसे किसी ने न काटा तो साहस करके उसने देखा कुछ लड़के एक मरियल कुत्ते को छेड़ रहे थे और वह कभी २ तंग आ कर भौंक देता था। उस ने संतोष का श्वास भरा और फिर नाले की लहरों पर दृष्टिपात किया। पानी अब भी उसी तीव्रता से बह रहा था। उस ने सोचा कि नाले की लहरें गिनने की बजाए थोड़ी देर सुस्ता लेना चाहिए। अटैची केस का तकिया बनाकर वह हरी-हरी घास पर लेट गया और सीने में हलचल मची होने के बावजूद वह शीघ्र ही निद्रा देवी की गोदी में पहुंच गया।

निर्दय अट्टहास और भयानक शोर ने उस के मस्तिष्क

के शांत तारों को छेड़ दिया और वह हड़-बड़ा कर उठ बैठा । उसने सब लोगों को नाले की लहरों की ओर ध्यान से देखते देखा उसने भी उसी ओर दृष्टि दौड़ाई तो देखा कि एक व्यक्ति जो केवल पगड़ी पहने हुए था, अपनी भैंस की दुम पकड़कर नाले को पार करने की चेष्टा कर रहा है । अब वह ऊंची २ लहरों के बीच में था और लहरें अपनी निर्दयी थपेड़ों के साथ उसे बार-बार पटक रही थीं और वह डुबकियाँ खा रहा था ! जभी लहर का निर्दय आघात उसके शरीर पर पड़ता और वह उलट कर डुबकी खाता तो किनारों से एक ठहाका उठता जो धीरे २ लहरों के अव्यवस्थित शोर में डूब जाता। सुरेन्द्र मानवीय सहानुभूति का यह हृदय भेदी प्रदर्शन देख कर कांप उठा । उस ने सोचा कि यदि वह भी लहरों के बीच में आने की चेष्टा करता तो कुछ क्षणों के लिये इन निर्दय लोगों का हास्य केन्द्र बन कर समाप्त हो जाता। उस के सीने में इन लोगों के प्रति एक अपरिमित घृणा जागृत होने लगी। घृणा से उसने आँखें उन की ओर से मोड़ लीं। पास ही घास पर उस बस्ती का एक नंग धड़ंग व्यक्ति दिखाई दिया। सुरेन्द्र ने उस से पूछा,

"यह नाले का पानी कब तक उतरेगा?"

"यही कोई आठ नौ बजे।"

"तब तो रात हो जाएगी ।" सुरेन्द्र ने अपनी घड़ी देखते हुए कहा। उस समय पाँच बजने वाले थे।

"जी"

"तब यह यात्री कैसे पार पहुंचेंगे?"

"तब हम इन को बाजू से पकड़ कर पार पहुंचा देंगे"

"तुम इन को अब क्यों नहीं इसी प्रकार पार पहुंचा देते ?"

"अब यदि इनको साथ ले जायें तो यह पांव उखड़ते ही अपने साथ हमें भी ले डूबेंगे।"

"तुम चलकर पार पहुंच सकते हो ?"

"जी"

"नाले में पानी कितना है।"

" यही कमर तक।"

"कमर तक तो इस में लहरें उठ रही हैं ?"

"जी, बस यह लहरें ही लहरें हैं। पानी तो घुटने तक ही है।"

"समस्त पाट में?"

,'जी, जिस मार्ग से इसे पार किया जा सकता है।"

"तो इस में पानी गहरा भी है ?"

"कहीं कहीं"

',क्या तुम इसे मुझे पार करके दिखा सकते हो ?"

"हाँ"

वह व्यक्ति सुरेन्द्र के कहने पर नाले के पानी को तिरछा चीरता हुआ नाले के मध्य में पहुंच गया। यहां लहरों का जोर कुछ कम था। परन्तु इस के आगे लहरें फिर तेजी से बही जा रही थीं। उसने पलट कर सुरेन्द्र की ओर देखा तो सुरेन्द्र ने उसे संकेत करते हुए कहा,

"ठहरो, मैं आया।"

कुछ लोग विस्मय पूर्वक सुरेन्द्र की ओर देखने लगे। एक चुप न रह सका और बोला,

"पागल हो रहे हो ?"

सुरेन्द्र ने इस बात पर कान देने की आवश्यकता न समझी। उसने कमीज और पतलून उतार कर अटैची केस में रखी और केवल कच्छा पहने अटैची केस सिर पर रख कर पानी में उतर गया। कुछ दूर तक तो सुगमता से चलता गया। परन्तु जब वह लहरों के बीच में पहुंचा तो उसे ऐसा लगा कि कोई उस के पांव के नीचे से भूमि खैंच रहा है। उस ने पांव जमाने की चेष्टा की परन्तु वह और अधिक उखड़ने लगे। सहसा उसे समुद्र की लहरों का स्मरण हो आया। एक बार वह कराची बंदर में समुद्र की लहरों में उतरा था तो उसके मित्रों ने उसे बताया था कि जब लहर आये, उसे फान्द जाना चाहिये या डुबकी लगा देनी चाहिये। यहां डुबकी लगाने का तो प्रश्न ही न था। इसलिए तेजी से उस ने फांदना शुरू किया। उस का श्वास फूलने लगा और प्रतिक्षण उसका साहस टूटने लगा। उसने कल्पना में ही देखा कि उसके पांव उखड़ गये हैं और लहरों में सिर टकराता, उभरता, गिरता, झेलम की गहराईयों में जा गिरा है। उस ने भय से आंखें बंद कर लीं और अपनी बची खुची शक्ति को संचित करके उसने उन्मादियों की भांति उस की ओर फांदना प्रारम्भ किया। अगले ही क्षण जब उस ने आंखें खोलीं तो देखा कि वह उस के समीप पहुंच चुका है। एक बार और जोर लगाया और उसका हाथ उस व्यक्ति के हाथ में था

"बाबू जी आप ने तो कमाल कर दिया।" उसने सुरेन्द्र का हाथ पकड़ते हुये कहा।

परन्तु सुरेन्द्र इतना हाँप रहा था कि वह देर तक उसे कुछ भी उत्तर न दे सका। बहुत देर तक नाले के बीच में

ठहरने के पश्चात सुरेन्द्र ने उस से आगे बढ़ने के लिये कहा।

"न, बाबू जी ! अब मैं आप को अकेला नहीं जाने दूंगा।"

"फिर ?"

"आप मेरा हाथ पकड़ लें।"

लग भग उतना ही या इस कुछ अधिक मार्ग और था। सुरेन्द्र ने उस व्यक्ति का हाथ पकड़ लिया और दोनों पुनः लहरों में कूद पड़े। अब की बार सुरेन्द्र को इतनी कठिनाई न हुई। वह साधारण से परिश्रम से कूदता फांदता दूसरे किनारे जा पहुंचा। वहां पहुंच कर उस ने उस व्यक्ति का धन्यवाद किया और बटवे से एक रुपया निकाल कर उस की हथेली भी गरमा दी। फिर अटैची केस से सूट निकाल कर पहना और उसी प्रकार जुराबों को पतलून पर चढ़ा कर आगे बढ़ निकला।

नवां परिच्छेद

सिघोई में पदार्पण करते समय सुरेन्द्र के मन की दशा बड़ी विचित्र थी। वह सोच रहा था कि देखें उसके साथ दमयन्ती कैसा व्यवहार करती है। क्या अब भी उसकी आँखों में वही चमक आजाएगी जो उसे मलिक वाल में देख कर पैदा हुई थी या क्या———परन्तु चित्र के दूसरी ओर उसे देखने का साहस न हुआ। उसने सोचा कि मलिक वाल से एकाएकी जाकर उसने कुछ पुरुषत्व का परिचय नहीं दिया। वह तो कोरी कायरता थी अर्थात् वह अपनी कल्पना का अन्त देखने का साहस न कर सका और क्षेत्र छोड़ कर भाग निकला। परन्तु अब फिर निज को उसी आग में झोंकना ? वह मूर्खता तो नहीं कर रहा था ? एक बार उसके पंख बढ़ते २ रुक गए। उसका जी चाहा कि वापस लौट जाए परन्तु नाले की तेज लहरों का ध्यान आते ही वह काँप उठा और जल्दी २ आगे बढ़ने लगा। गली में पग धरते ही किसी ने उत्सुकता पूर्ण शब्दों में उसका स्वागत किया ,

"नमस्ते जी"

और सुरेन्द्र ने उस ओर पलट कर देखा। पहले ही मकान की ड्योढ़ी में बैठी कमला चादर पर पत्तियां काढ़ रही थी और वह सुरेन्द्र को देखते ही उठ कर खड़ी हो गई थी ! सुरेन्द्र को कमला के मिलने की कोई आशा नहीं थी इसलिए वह यत्न करके भी अपने आश्चर्य को छुपा न सका।

"तुम कमला !" वह आश्चर्य से बड़बड़ाया ।

"जी"

"आनन्द से तो हो ?"

"कृपा है।"

"किस की ?" सुरेन्द्र ने अपने विशिष्ट व्यंग्य से कहा।

"बैठिए ना।" कमला ने बात टालते हुए कहा।

"आता हूं—जरा आगे मिल आऊं।"

कुछ ही दूर आगे बढ़ने पर उसे अपनी सास अपनी ओर आती हुई दिखाई दी। उसने झुक कर उसे नमस्कार की। उसकी सास ने भी प्रेम से उसके माथे पर प्यार दिया। फिर वह भी उसके साथ ही लौट पड़ी। घर पहुँचते ही वह स्त्री-पुरुषों के समूह में घिर गया। उसने सोचा कि उसकी पत्नी भी इसी समूह में कहीं होगी क्योंकि वह मायके से अपनी माता के साथ यहां अवश्य आई होगी। उसने चारों ओर दृष्टिपात किया तो अपनी पत्नी की बजाए एक कोने में दमयन्ती का मुखरित मुख दिखाई दिया। वह लपक कर उसके पास पहुँच गया।

"नमस्ते जी" सुरेन्द्र ने उसका ध्यान अपनी ओर अकृष्ट करते हुए कहा।

"नमस्ते" दमयन्ती ने सुरेन्द्र की ओर मुड़ते हुए कहा। फिर सुरेन्द्र को देखकर उत्सुकता से बोली,

"आप आ गए ?"

"देख लीजिए !" सुरेन्द्र ने अपने विशिष्ट ढंग से कहा।

"बैठिएगा"

"कहां ?"

"सिर आँखों पर"

"यह भी कोई बैठने का स्थान है ?"

"फिर"

"फिर मन में बिठाइए" सुरेन्द्र ने चुपके से कहा ।

दमयन्ती ने घबराकर चारों ओर देखा, परन्तु सब को अपने आप में मस्त देखकर मुस्कराते हुए कहा,

"मन तो देर से आप के लिए तड़प रहा है।"

"सच !" सुरेन्द्र ने हर्षित होते हुए कहा।

"अब अपने मन से पूछ लीजिए।"

"नाले की दशा जानती हो क्या है ?"

"नहीं तो"

"बस एक मील में फैला हुआ है। उसे पार करके आया हूं।"

"हाय मैं मर गई !" दमयन्ती ने घबरा कर कहा, "यदि शत्रुओं को कुछ हो जाता ?"

"अब अपने मरने वाले शब्द तो लो वापस और शत्रु ठीक ठाक हैं।"

"आप तो मेरे प्राण हैं" दमयन्ती ने धीरे से कहा। क्षण भर के पश्चात् फिर वृद्धि की,

"मेरा हृदय धक-धक कर रहा है।"

"देखूं तो" सुरेन्द्र ने हाथ बढ़ाते हुए कहा और दमयन्ती पीछे हट गई।

"बैठिये, मैं आप के लिए पानी बना लाऊं।" उसने आंखों ही आंखों में मुस्कराते हुए कहा।

क्षण भर के पश्चात दमयन्ती एक प्लेट में कुछ मिठाई और

एक गिलास सिकंजबीन लेकर आ गई । सुरेन्द्र के सामने दोनों रखते हुए उसने कहा,

"पीजिए"

"और आप"

"मैं तो अभी २ पी चुकी हूं"

"यह स्त्रियों वाला झूठ"

और दमयन्ती रोकने के यत्न के बावजूद मुस्करा दी और सुरेन्द्र की ओर कुछ इस ढंग से देखा कि उसने विवश हो कर गिलास अपने हाथ में ले लिया । फिर भी उसने दमयन्ती को एक गुलाब जामन खाने पर बाधित कर दिया ।

बातों ही बातों में सुरेन्द्र यह भी जान गया कि उसकी पत्नी अस्वस्थ होने के कारण विवाह में नहीं आ सकी । उसने सन्तोष का श्वास भरा और शेष सिकंजबीन एक ही घूंट में पी गया ।

(२)

सौभाग्य से उस रात्रि को गली की बत्ती लाख प्रयत्न करने पर भी न जल सकी । इसलिए यद्यपि घर के अंदर प्रकाश फैला हुआ था, परन्तु बाहिर अमावस की रात्रि की सी दशा थी । इसके अतिरिक्त बादलों ने सन्ध्या से ही संघोई के ऊपर मंडलाना प्रारम्भ कर दिया था । रात के नौ बजे थे और खाना मिलने में अभी कम से कम एक घण्टे की देरी थी । इस लिए गली में स्थान २ पर पुरुषों की टोलियां बिखरी बैठी थीं । सुरेन्द्र ने ध्यान से देखा तो एक ओर आमने सामने बैठीं दमयन्ती और कमला बातें कर रही थीं । वह सीधा उनके पास पहुंच गया ।

उसे देखते ही दमयन्ती एक ओर सरक गई और सुरेन्द्र खाली स्थान पर बैठ गया।

"फिर आप आए नहीं।" कमला ने शिकायत की।

"आप तो यहां बैठी हैं, जाता कहां ?" सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। फिर एक उचटती हुई निगाह कमला के मुख पर डाली और वह घूमती हुई दमयन्ती तक पहुँच गई। उसका एक हाथ उसके पास ही पड़ा था। उसने अपना दाहिना हाथ सरका कर दमयन्ती के हाथ पर रख दिया और पुनः कमला से बातें करने लगा। सुरेन्द्र ने रात्रि के अन्धेरे का खूब लाभ उठाया। वह कमला से बातें करता तो धीरे २ दमयन्ती के हाथ को दबाता जाता और दमयन्ती की ओर ध्यान करता तो कमला का हाथ उसके हाथ में होता। कमला सामने वाली चारपाई पर टांगें नीचे लटकाए बैठी थी। इस लिए कभी २ सुरेन्द्र का बायां हाथ उसकी टांगों को सहलाने लगता। थोड़ी देर पश्चात् सुरेन्द्र चारपाई पर लेट गया दमयन्ती और भी पीछे सरक गई परन्तु उसका हाथ सुरेन्द्र के हाथ में रहा। अब सुरेन्द्र ने साहस करके पांव के अंगूठे से दमयन्ती के पांव को सहलाना शुरु कर दिया। सुरेन्द्र की हरकतें प्रति क्षण बढ़ती गईं। अब अवसर पा कर वह कमला और दमयन्ती की जांघों पर चुटकियां भी लेने लगा। मजे की बात यह थी कि प्रत्येक यह समझ रही..थी कि सुरेन्द्र की प्रेम दृष्टि केवल उसीकी ओर है और उसकी चंचलता केवल उसी के लिए है। देर तक वह दोनों के हाथ अपने हाथ में दबाये चहक २ कर बातें करता रहा। कभी कमला से व्यंग्य करता और कभी दमयन्ती से प्रणय प्रारम्भ कर देता तो कमला यह समझती कि यह सब दमयन्ती की आंखों में धूलि डालने

मात्र के लिए है। क्षण भर के पश्चात् वह कमला से हंस २ कर बातें करता होता और दमयन्ती की टांगों पर धीरे धीरे अंगु-लियां फेर रहा होता। उस समय दमयन्ती सोचती की सुरेन्द्र बड़ी चतुराई से कमला को धोखा दे रहा है। और कभी कभी वह अपने भावों को प्रकट करने के लिए सुरेन्द्र के हाथ को धीरे से दबा देती। फिर किसी ने कमला को पुकारा और वह आकांक्षा पूर्ण दृष्टि से सुरेन्द्र की ओर देखती हुई एक बार जोर से सुरेन्द्र के हाथ को दबा कर उठ गई और सुरेन्द्र ने दमयन्ती की ओर ध्यान किया,

"आप ने कमला को खूब बनाया।" दमयन्ती ने मुस्कराते हुए कहा।

"और क्या करता ?" सुरेन्द्र ने चंचलता से दमयन्ती के हाथों से खेलते हुए कहा।

"रात्रि को आप यहां मत सोईये।" दमयन्ती ने धीरे से कहा।

"फिर ?"

"उधर मेरी मौसी का घर है, वहां सोयेंगे।"

"अच्छा"

"यहां तो भीड़ होगी। वहाँ आनंद से बातें करेंगे।" दमयन्ती ने हर्ष पूर्वक कहा।

"तो फिर ठीक है।" सुरेन्द्र ने उसके हर्ष में शामिल होते हुए कहा। इतने में कमला आ गई और उसके थोड़ी देर के पश्चात खाने का बुलावा भी। इस लिए बातें यहीं समाप्त हो गईं।

खाना खाने के तुरंत पश्चात् सुरेन्द्र की सास उसके पास आ गई और कहने लगी,

"आओ चलें।"

"कहाँ ?" सुरेन्द्र ने आश्चर्य से पूछा।

"उधर उस मकान में।"

"वहाँ क्या है ?"

"वहाँ तुम्हारे सोने का प्रबन्ध है।"

"वह क्या दमयन्ती की मौसी का घर है ?"

"नहीं वह तो मेरी बहन का घर है। दमयन्ती की मौसी का घर तो उस ओर है।"

"परन्तु मैं ने तो दमयन्ती की मौसी के घर सोने का ठीक किया है।"

"वह कुछ अच्छा स्थान नहीं है। यह मकान नया बना है।"

"परन्तु मैं ने तो..........."

"यहाँ अनंद से सो सकोगे। वहाँ जा कर क्या लोगे ?"

"फिर भी ......"

"थके हुए हो। अब चल कर सो जाओ। बातें करने के लिए कल दिन निकलेगा ही।"

"चलो" सुरेन्द्र कोई और बहाना न कर सकने के कारण क्षुब्ध हृदय से अपनी सास के साथ हो लिया। परन्तु वह बार बार यह सोच रहा था कि वह अपनी बेटी के पास क्यों न रह गई। उसे किस डाक्टर ने कहा कि अपनी बीमार बेटी को छोड़ कर यहां अवश्य पहुँचे। और यदि आना ही था तो मेरे सिर पर सवार होना क्या आवश्यक था। अच्छा बुरा, जहां भी होता मैं सो जाता। उसको इससे क्या ? और एक बार दाँत पीस कर उसने अपनी सास की ओर देखा। परन्तु फिर अपनी विवशता पर होंठ काट कर सिर झुका लिया।

उस रात कोमल बिस्तर की रेशमी चादरें भी सुरेन्द्र को प्रसन्न न कर सकीं। वह व्याकुता से करवटें बदलता रहा। उसे बार २ यह ध्यान आता कि उसे बाध्य क्यों किया जाता है कि इच्छा अनिच्छा में यहां अवश्य सोऊं। फिर उसकी आंखों के सामने दमयन्ती की भटकती हुई आंखें घूम गईं जो पुरुष समूह में उसको ढूंढ रही थी और वह सोचने लगा कि वह कितना कायर है जो एक स्त्री के अत्याचार पीड़ित मुख को देख कर भी क्षुब्ध नहीं होता। उसका मन कहता था कि अपने मुंह पर जोर २ से चांटे मारे। एक बार उसकी इच्छा हुई कि छत पर से छलांग लगा गली में पहुंच जाए और दमयन्ती की मौसी का घर पूछता हुआ उस चन्द्र-वदना के पास पहुंच जाए। फिर एक आंतरिक भय उसके पांवों को शृंखला बद्ध कर देता। एक बार तो वह छत की मुंडेर तक पहुँच कर लौटा। उसने विचार किया कि यदि वह द्वार के ऊपर बढ़ी हुई लकड़ी पर पांव रखकर दीवार का सहारा लेता हुआ रोशनदान की सिलाखों को पकड़ ले और फिर बांये हाथ से इस लकड़ी को थाम ले और दाहिने हाथ से रोशनदान के पास बढ़ी हुई ईटों का सहारा लेकर नीचे लटक जाए तो वह सहन की खिड़की तक पहुँच सकता है। तत्पश्चात् एक साधारण सी छलांग और वह गली में होगा। उसने चाहा कि ऐसा कर डाले। फिर उसने सोचा कि यदि किसी ने उसे इस अवस्था में देख लिया तो क्या समझेगा। वह चौंक कर पीछे हट जाता और फिर बिस्तर की रेशमी चादरें उसे कांटों पर लिटातीं और वह निःश्वास भर २ कर मुरझाये हुए सितारों की ओर देखता जिनके प्रकाश को हल्के हल्के बादलों की दुखद चादर ने निराश बना रखा था। वह सोचता कि

उसकी आशाओं पर भी इन सितारों की भांति दुःख के बादल छाये हुए हैं। दुःख के ऐसे बादल जिन को हटा देना सम्भव नहीं। वह विह्वल होकर सिर को झटक देता। परन्तु क्षण भर के पश्चात् वह फिर कल्पना ही कल्पना में दमयन्ती की गोदी में जा पहुँचता। इस प्रकार बिस्तर पर करवटें लेते लेते उसने चार बजा दिए। फिर न जाने क्यों और कैसे उसे नींद ने थपकियां देकर सुला दिया। उसे जब सुद्ध आई तो धूप उसके मुख पर खेल रही थी और कोई धीरे धीरे उसका कन्धा हिला रहा था। उसने पलट कर उसकी ओर देखा तो अपनी सास को खड़ा पाया। उसकी सास ने उसे जागता देख कर कहा,

"दमयन्ती की मासी के घर जाते तो क्षण भर भी न सो सकते"

सुरेन्द्र ने मन ही मन सोचा कि अब इसे कौन बताए कि यहाँ समस्त रात्रि काँटों पर बीती है और यह सब उसी के कारण हुआ है। परन्तु वह उसे कृतज्ञ बनाने पर तुली हुई थी। अतः उसने अनिच्छा पूर्वक कहा,

"हूं"

"अब उठो और नहा धो लो।"

"जी, नहा लेता हूं।"

सुरेन्द्र की सास तो यह आज्ञा देकर चली गई और सुरेन्द्र बिस्तर पर बैठ कर गुनगुनाने लगा,

"मुझ पे एहसान न करते तो यह एहसाँ होता"

और एक कटु मुस्कान उसके होठों पर फूट पड़ी। वह अनमना सा पलंग से उठा और धीरे २ सीढ़ियाँ उतर कर विवाह वाले घर की ओर चल दिया। सब से पहले उसे दमयन्ती मिली

सुरेन्द्र ने लज्जा वश सिर झुका लिया और धीमे से स्वर में कहा,

"मैं लज्जित........"

"आप की सास आपको घसीट कर ले गई थी।" दमयन्ती ने एक शुष्क मुस्कान मुख पर लाते हुए कहा।

"तो आप जानती हैं।"

"हां! मैं आप को बुलाने आई थी! परन्तु आपकी सास पहलें ही आप के सिर पर खड़ी थी।"

"मैं डरता था कि आप कहीं मुझ से........"

"आप क्या बात करते हैं। आप अपनी इच्छा से भी न आते तो भी आप मालिक थे।"

और सुरेन्द्र का जी चाहा कि आने जाने वालों का ध्यान न करते हुए तुरंत दमयन्ती से लिपट जाए। उसने प्रेम भरी दृष्टि दमयन्ती के मुख पर डाली और मुस्करा कर कहने लगा।

"मेरा दुर्भाग्य है कि आप से बातें करने का अवसर खो गया।"

"या मेरा?" दमयन्ती ने मुस्कराने का प्रयत्न करते हुए कहा।

"या हम दोनों का?" सुरेन्द्र ने संशोधन किया और फिर दोनों मुस्करा दिए। सुरेन्द्र दुर्भाग्य प्रकट करने का नया ढंग देखकर मन ही मन चीख उठा। इतने में एक ओर से कमला भी चहकती हुई पहुंच गई। सुरेन्द्र ने उसे देखते ही कहा,

"खुल गई आपकी नींद?"

"मैं तो नहा भी चुकी।" कमला ने मुस्कराते हुए कहा।

"तब तो हम पीछे रह गए।"

"आप भी नहा लीजिए।"

"नाहाए कैसे, न साबुन, न तेल और न तौलिया।"

"मैं लाई" "मैं लाई" कमला और दमयन्ती ने एक ही साथ कहा। दोनों तेजी से अपने २ घरों को भाग गईं। सुरेन्द्र उनकी इस प्रतियोगिता का ध्यान करके मन ही मन झूम उठा। क्षण भर के पश्चात् कमला तीनों चीजें लेकर पहुँच गई और अगले क्षण दमयन्ती भी। सुरेन्द्र ने कमला के हाथों से तीनों चीजें ले लीं। उसके साथ ही उसने कनखियों से देखा कि दमयन्ती उसकी इस हरकत से निराश सी होगई है। उसने दमयन्ती की ओर देखते हुए कहा,

"आप से कल"

और फिर कुछ इस ढंग से दमयन्ती को आँखों से इशारा किया कि दमयन्ती प्रसन्न होगई और समझने लगी कि सुरेन्द्र कमला के सिर न होने के लिए ऐसा कर रहा है। दमयन्ती की ओर से मुंह मोड़ते हुए उसने कमला की ओर देखा तो उसे अनुभव हुआ कि कमला का अंग प्रत्यंग हर्ष से फड़क रहा है। वह स्वयं भी चंचलता से मुस्कराता हुआ नहाने के लिए मन्दिर के कूएं पर चला गया।

सुरेन्द्र जब नहा कर वापस लौटा तो कमला अपने मकान के द्वार पर खड़ी थी। सुरेन्द्र को देखते ही वह अन्दर चली गई। सुरेन्द्र उसका आशय समझ गया। वह उसके पीछे २ गया और द्वार पर खड़े होकर पुकारा,

"कमला"

परन्तु किसी ने उत्तर न दिया। उसने ड्योढ़ी में खड़े होकर पुकारा,

"कमला"

परन्तु इसका भी कोई परिणाम न हुआ। उसने आगे बढ़-कर अन्दर के द्वार के समीप खड़े होकर पुकारा,

"कमला"

और किसी का रस पूर्ण स्वर सुनाई दिया,

"आ जाइये"

सुरेन्द्र ने साहस से मकान में पदार्पण किया। उसने देखा कि कमला दर्पण के आगे खड़ी अपने बालों को संवार रही है। सुरेन्द्र ने साबुन आदि आगे बढ़ाते हुए कहा,

"यह लीजिए साबुन, तेल, तौलिया।"

"आइये न" कमला ने तुरंत पलट कर सुरेन्द्र की ओर देखते हुए कहा। उसने देखा कि उसकी आंखों में एक विचित्र उन्माद झूम रहा था। सुरेन्द्र ने साबुन, तेल, इत्यादि मेज़ पर रखते हुए कहा "अब फिर आऊंगा" परन्तु यह शब्द कह चुकने के पश्चात् वह स्वयं भी चकित था कि उसने यह कैसे कह डाला। उसने व्याकुलता से दृष्टि कमला के मुख पर डाली। इसके साथ ही कमला ने अपनी समस्त जादू करने वाली शक्ति आंखों में एकत्र करते हुए कहा,

"बैठिये तो सही"

परन्तु सुरेन्द्र पर तो मानों किसीने जादू कर दिया। एक बार फिर एकाएक उसके मुख से यह शब्द निकल गए,

"अब फिर आऊंगा"

वह चकित था कि सहसा उसकी वाणी उसके नियन्त्रण से कैसे निकल गई है कि बैठने की इच्छा रखते हुए भी कह रहा है "अब फिर आऊंगा"

"बैठिये गा" एक बार फिर किसी ने अत्यंत नम्र स्वर से कहा।

और सुरेन्द्र कमला के इस विनय स्वर को सुनकर काँप उठा। उसे ऐसे लगा कि किसी ने अत्यंत निर्दयता से उसके नंगे शरीर पर अपनी पूरी शक्ति से कोड़ा मारा है। वह दर्द के कारण तिलमिला उठा और तीसरी बार फिर आऊंगा कहता हुआ कमरे से बाहिर भाग गया। घर से बाहिर निकलते ही सब जादू एक साथ उड़ गया। सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि वह बड़ा मूर्ख है कि बार २ अवसर पाकर खो देता है। उसे अपनी इस मूर्खता पर इतना क्रोध आया कि उसने गली से जाकर अपनी छाती पर जोर से मुक्का मारा और पास ही पड़ी हुई चारपाई पर मुंह उलटा करके लेट गया। इतने में किसी ने उसके पास लेटते हुए कहा,

"आप यहाँ क्यों लेट गए?"

सुरेन्द्र ने पलट कर देखा तो कमला उसके समीप बैठी थी। उसे इतना आश्चर्य जीवन में शायद ही कभी हुआ होगा। उसे कभी आशा न थी कि इतना निराशाजनक उत्तर पाकर फिर कमला उसके पास चली आएगी। उसने बौखलाते हुए कहा,

"मैं तो समझता था कि·········"

"अब मैं आपके पास कभी न आऊंगी" कमला ने वाक्य पूरा किया।

"जी, मुझे कभी आशा न थी कि यह सौंदर्य इतना निरादर सहन कर लेगा।"

"तो फिर आपने मुझे समझा ही नहीं।"

"सम्भव है"

"परन्तु मैं आपको समझ गई।"

"क्या?"

"यही, आपके इस त्याग को।"

"जी, जो आप ने मेरी प्रार्थना को अस्वीकार करने में

किया। मैं देख रही थी कि आपके मन में झंझावात उठ रहा था। परन्तु आपने असीम प्रेम के बावजूद मुझे भ्रष्ट करना पसंद न किया।"

"कमला!"

"आप सच्चे मोती हैं"

"कमला!"

"जी चाहता है कि आपके पांव चूम लूं।"

"कमला! और सुरेन्द्र ने तड़पकर कमला के आंचल में मुंह छिपा लिया। उसे आज तक अपनी आत्मा की दुत्कार सहन न करनी पड़ी थी। उसने चाहा कि कमला को अपने मन की दशा अक्षरश: कह डाले परन्तु उसकी तो मानों किसी ने वाणी छीन ली थी। उसका साहस इस भोली भाली लड़की के विचारों को ध्वंस करने की हिम्मत न कर सका और वह मन ही मन क्षुब्ध होकर मौन हो गया।

(३)

दोपहर का खाना खाने के पश्चात् सुरेन्द्र कुछ लोगों के साथ ताश खेलने चला गया। लगभग चार बजे जब वह वापिस लौटा तो उसने देखा कि दमयन्ती गली में चारपाई पर बैठी एक लाल दुपट्टे पर गोटा लगा रही है। सुरेन्द्र के पास पहुंचते ही उसने दुपट्टे से आंखें हटाकर सुरेन्द्र की ओर देखा और उसके हाथ में ताश देखकर उसने झपट कर ताश छीन ली।

"यह ताश आपको हमारे पास बैठने ही नहीं देती" दमयंती ने मुस्कराते हुए कहा, "मैं इसे अभी ट्रंक में रखकर ताला लगाती हूं" साथ ही वह खिलखिलाती हुई अपने मकान की ओर दौड़ गई। सुरेन्द्र भी मुस्करा कर वहीं चारपाई पर बैठ गया।

क्षण भर के बाद वह वापस लौटी तो उसके हाथ में ताश के स्थान पर मिठाई की पलेट थी। उसने सुरेन्द्र के समीप आते हुए कहा,

"लो, यह खाओ।" और फिर स्वयं भी मुस्कराकर उसके समीप बैठ गई। परन्तु वह बैठी ही थी कि किसी ने उसे घर के अन्दर बुलाया। उसने पलटकर देखा और मुंह से कुछ बड़बड़ाती हुई दुपट्टा उठाकर अन्दर चली गई। उधर सुरेन्द्र पलेट से मिठाई के दाने उछाल २ कर खाने लगा। सहसा उसकी दृष्टि एक लम्बे कद, गंदमी रंग, आकर्षक मुख और सुडौल शरीर वाली सर्व सुन्दरी युवती पर पड़ी जो मस्त चाल से गली में प्रविष्ट हो रही थी। वह आगे आने वाले खतरे का मुकाबिला करने के लिए सम्भल कर बैठ गया। वह लड़की उसके समीप पहुंची तो उसने देखा कि वह लड़की जिज्ञासु नेत्रों से उसे देख रही है। कुछ आगे बढ़कर वह पग बढ़ाती हुई उसके समीप पहुंच गई। सुरेन्द्र इसके साहस पर अभी आश्चर्य ही कर रहा था कि उसने मुस्कराते हुए कहा,

"आपने मुझे पहचाना नहीं?"

सुरेन्द्र ने एक बार फिर आंख भरकर उसकी ओर देखा परन्तु वह बहुत जोर लगाकर भी उसके बारे में कुछ याद न कर सका। उसने अपने मुख पर निराशा लाते हुए कहा,

"सम्भवतः नहीं।"

"मैं सुमित्रा हूं" उस युवती ने बड़े भोलेपन से कहा। परन्तु फिर भी सुरेन्द्र उसे बीते दिनों के चित्र में कोई उचित स्थान न दे सका। उसे ध्यान न आता था कि इस नाम की किसी लड़की का उसके घटना पूर्ण जीवन में कभी प्रवेश

भी हुआ हो। उसने पुनः निराशा से सिर हिलाते हुए कहा,

"क्षमा कीजिए, मेरी स्मरण शक्ति साथ नहीं देती।"

सुमित्री सुरेन्द्र के इस उत्तर से कुछ परेशान सी हो गई उसने झिझकते हुए कहा,

"तो फिर जाने दीजिए।"

"नहीं सुरेन्द्र ने उसकी निराशा को अनुभव करते हुए कहा,

"आप थोड़ा और स्पष्ट करके बताएं तो मैं समझ जाऊंगा। इस प्रकार यदि आप चली गईं तो स्वयं मुझे बड़ा दुःख होगा।"

"आपकी भाभी राज है न" सुमित्रा ने सुरेन्द्र की बातों से प्रोत्साहित होते हुए कहा, "मैं उसकी मौसी की लड़की हूं।"

"ओह—सुमित्रा, तुम!" सुरेन्द्र ने आश्चर्य चकित होते हुए कहा "तुम इतनी बड़ी कब हो गई।" और कल्पना ही कल्पना में उसने देखा कि एक छोटी सी नौ दस वर्ष की लड़की आंचल से नाक साफ कर रही है। और मचल २ कर मां से इमली खरीदने के लिए पैसा माँग रही है। उसे विश्वास न होता था कि वह छोटी गदली सी लड़की यह सुन्दर युवती हो सकती है। मान लिया कि सात वर्ष में उसका कद इतना बढ़ सकता है परन्तु वह भद्दी सी नाक यह लम्बी सीधी नाक कैसे बन सकती है। और उन सदा दुखती रहने वाली आंखों का इन कटोरों से क्या सम्बन्ध। उसने एक बार फिर जी भर-कर सुमित्रा के मुख की ओर देखा और उसने सोचा कि पुरुषों की बजाए स्त्रियों को सुन्दरता देते समय प्रकृति अधिक विशालता दिखाती है। उसने मुस्कराते हुए वृद्धि की,

"तुम मित्रो हो तो इतनी देर पहेलियां क्यों बुझाती रहीं। सीधे भागकर मेरे पास आ जाना था।"

"आ तो गई थी परन्त आप ने पहचाना ही नहीं।" सुमित्रा ने शिकायत के ढंग से कहा।

"जी, यह तो मुझ से भूल हो गई।" सुरेन्द्र ने मुस्कराकर कहा,

"अब बैठ जाइये या खड़े रहने का व्रत ले रखा है।"

और सावत्री झट से सुरेन्द्र के समीप खाट पर बैठ गई। सुरेन्द्र ने मिठाई की पलेट उसकी ओर सरकाते हुए कहा,

"लीजिए, खाइये।"

सुमित्रा ने मुस्कराकर सुरेन्द्र की ओर देखा फिर आंखें नीची किए २ पलेट में से बर्फी का एक टुकड़ा उठाकर कहा,

"धन्यवाद!"

और सुरेन्द्र इस भोली लड़की के बातचीत करने के सभ्य ढंग की मन ही मन प्रशंसा करने लगा। फिर बातें होने लगीं। वही अर्थहीन सी बे सिर पैर बातें। परन्तु सुरेन्द्र अनुभव कर रहा था कि इस टेढ़ी-मेढ़ी सी उजड्ड लड़की के अंगों में अनुपात और आकर्षण पैदा होने के साथ २ उसकी बातों में मधुरता और कोमलता भी आ गई है। उसने मुस्कराते हुए कहा,

"तुम तो बड़ी स्यानी हो गई हो।"

"अब लगे आप मुझे बनाने" सुमित्रा ने सुरेन्द्र की आँखों में आँखें डालते हुए कहा। फिर मुस्कराकर एक विचित्र ढंग से उसको निहारती हुई चली गई।

वह रात बरात की भीड़-भाड़ में बीत गई और सुरेन्द्र

दमयन्ती से मिल सकने के प्रयत्न में असफल रहा। दूल्हा था कि सुरेन्द्र को क्षण भर के लिए पृथक न होने देता था। सम्भवतः डरता था कि उसकी अनुपस्थिति में सालियां उसे नोच २ खायेंगी।

(४)

दूसरे दिन मन्दिर के कुएं पर नहा आने के पश्चात् जब सुरेन्द्र ने दमयन्ती से ताश मांगी तो उसने चंचलता से मुस्कराते हुए कहा,

"ऊं, ताश गई।"

"कहां ?"

"अपने घर" और वह उसी प्रकार मुस्कराती हुई सुरेन्द्र के पास से निकल गई। थोड़ी देर के बाद जब वह लौटी तो सुरेन्द्र ताड़ गया कि उस के हाथ वाला रेशमी रूमाल ताश को छुपाये हुए है। उसने दमयन्ती के पास पहुंचते हुए कहा,

"यह रूमाल तो दिखाना जरा।"

"देख तो रहे हैं आप।"

"जी में तो जरा हाथ लगाकर देखना चाहता हूं कि यह कैसा है।"

"रेशमी है।"

"अब हम एक रूमाल के योग्य भी नहीं रहे ?"

"जी नहीं बात यह है कि यह रूमाल ही आपके योग्य नहीं।"

"मुझे पसंद है" कहते २ सुरेन्द्र ने झपटकर दमयंती के हाथ से रूमाल छीन लिया। रूमाल तो उसके हाथों में आ गया

परन्तु ताश नीचे गिर गई। उसे उठाने के लिए दोनों बढ़े। सुरेन्द्र ने चपलता से पांव की ठोकर मारकर उसे एक ओर सरका दिया। फिर लपककर स्वयं उठा लिया और हंसता हुआ वहाँ से भाग गया।

दोपहर को खाना खाने के बाद सुरेन्द्र गली में चारपाई पर बैठा था और बहुत सी लड़कियाँ गली में इधर उधर बिखरी हुई हाथों में महन्दी रचा रचा कर दिलों में आग लगा रही थीं। इतने में सुमित्री भी आ गई और 'नमस्ते' कह कर सुरेन्द्र के पास ही बैठ गई और मुस्करा कर पूछने लगी,

"आप ने महन्दी नहीं लगाई?"

"कोई लगा दे तो लगवायें।"

"यह बात है।" कहते २ सुमित्री मुस्कराती हुई महन्दी लेने चली गई। क्षण भर बाद जब वह लौटी तो उसके हाथ में महन्दी का भरा हुआ कटोरा था। उसने सुरेन्द्र के पास बैठते हुए कहा,

"लाइये हाथ"

"हाथों पर तो मैं केवल नाखूनों पर ही महन्दी लगाता हूँ"

"लाइये नाखूनों पर ही लगा दूं" कहते-कहते सुमित्री ने हाथ अपने हाथ में ले लिया और बड़ी सुंदरता से उसके नाखूनों पर महन्दी लगानी शुरू करदी। सुरेन्द्र को अपना हाथ सुमित्री के पतले २ कोमल हाथों में देते हुए नशा सा महसूस हुआ। उस उन्माद को समस्त शरीर में समा लेने के लिए उसने अपनी आंखें बंद कर लीं। एक हाथ के नाखूनों पर महन्दी लगा चुकने के पश्चात् जब सुमित्री ने उसका दूसरा हाथ अपने हाथ में लिया तो छूटते ही बोली,

"आप का टेस्ट (taste) बहुत अच्छा है।"

"यह कल का प्रतिकार है?" सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए कहा।

"वह कैसे ?"

"मैं ने तुम्हें स्यानी कहा था।"

"ओह, नहीं।" सुमित्री ने हंसते हुए कहा और सुरेन्द्र ने अनुभव किया कि सुमित्री धीरे २ उसका हाथ दबा रही है। उसने मन ही मन कहा,

"दबाये जा, दबाये जा" और गुनगुनाना शुरू किया,

"अभी तो मैं जवान हूं ...."

हाथ में महन्दी लगा चुकने के बाद सुमित्री ने कहा। "लाइये पाँव पर भी लगा दूं।"

"जी यह पाप मुझ से न हो सकेगा।"

"पाप कैसा ?"

"यही, इन कोमल अंगुलियों को अपने खुरदरे पांव से छूने देना।"

"आज मेरा भाग्य जागने दीजिए।"

सुरेन्द्र ने आश्चर्य से सुमित्री की ओर देखा। फिर हंस कर कहने लगा,

"तुम पत्थर की सिल तो नहीं' जो मेरे पांव से छूकर अहिल्या बन जाओ। और मैं भी भगवान् राम नहीं।"

"मेरी आँखों से देखिए।" सुमित्री ने धीरे से कहा और सुरेन्द्र की आँखें उस की ओर देख कर कांप उठीं। अगले ही क्षण उस ने चुपके से पांव बढ़ा दिए। नाखूनों पर महंदी लगा चुकने के बाद उस ने पांवों के तलवों के बीच महंदी लगानी शुरू की सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए पूछा,

"अब यह क्या होने लगा है ?"

"लगा लूं। फिर देख लीजिगा।"

और जब सुमित्री अपनी चित्रकारी समाप्त कर चुकी तो

सुरेन्द्र ने आश्चर्य से देखा कि सुमित्री ने उस के पावों के तलवों पर हृदय का चित्र बना दिया है। उसने विस्मय से पूछा,

"यह क्या कर दिया सुमित्री !

"कुछ नहीं जरा दिल का चित्र बनाया है।"

"पांव के नीचे ?"

"जी, आप के पांव के नीचे।"

"परन्तु यह तो कुचला जाएगा।"

"कुचला तो कब से जा रहा है।"

"सुमित्री !"

"यह कम है कि आप कुचल रहे हैं ?"

"सुमित्री !" और सुरेन्द्र ने बौखला कर सुमित्री के मुख पर दृष्टि जमा दी। सुमित्री ने क्षण भर के लिए आँखों ही आंखों में कुछ कहा और फिर लज्जा से आंखें झुका लीं। सुरेन्द्र आश्चर्य से सोचने लगा कि यह भोली भाली लड़की इसे आंखों ही आंखों में क्या से क्या बना गई। कौन सोच सकता था कि इस सादगी के पर्दे में यह जादू छुपा है। पाँव के नीचे दिल बनाना। यह उसे कैसे सूझी। यह एक अल्हड़ युवती, खिल उठने को उत्सुक कली और यह निखर जाने को व्याकुल चाँदनी, यह सुमित्री ! सहसा उसे जिगर मुरादाबादी का वह पद स्मरण हो आया,

"आप के पांव के नीचे दिल होगा
इक जरा आप को ज़हमत होगी"

और उस ने सोचा कि जिगर को यह लिखने में कितना विचार करना पड़ा होगा परन्तु सुमित्रा ने उसे कितनी सादगी से व्यक्त किया है और वह व्यक्त भी कहां किया। जिगर के

पद में वह सादगी और कौतुहल कहाँ जो सुमित्री के इन वाक्यों में प्रकट है।

"कुछ नहीं, जरा दिल का चित्र बनाया है।"

"पांव के नीचे।"

"जी आप के पांव के नीचे।"

"परन्तु यह तो कुचला जायगा।"

"कुचला तो कल से जा रहा है।"

"सुमित्री"

"यही क्या कम है कि आप कुचले जा रहे हैं-?"

"उसे लगा कि मेरा सिर घूम रहा है। ऐसा आभास हुआ कि तलवों के जितने भाग पर महंदी लगी है वह आग पर रख दिये गए हैं और उन की गर्मी किसी अज्ञात विद्युत शक्ति द्वारा उस के मन को गर्म कर रही है। उसने विह्वल हो कर कहा,

"सुमित्री ! मैं यह महंदी धोने लगा हूं।"

"यह अत्याचार न कीजिए।"

"अत्याचार ! यह तो कांटों की भांति मेरे हृदय में चुभ रही है।"

"प्रेम एक अनन्त चुभन का नाम है।" सुमित्री ने मंद स्वर से कहा और सुरेन्द्र का मुंह खुले का खुला रह गया। वह चकित था कि प्रेम के विषय में एक अल्हड़ सी लड़की का दृष्टि-कोण कितना स्पष्ट है। प्रेम एक अनन्त चुभन के और क्या है?" उस ने सोचा कि वह शेखूपुरे चला जाएगा और, सुमित्री हाँ, सुमित्री सम्भवतः यहीं रह जायगी। फिर न जाने जीवन भर भेंट होगी अथवा नहीं। इस सारे जीवन में इस युवती की याद एक अनन्त चुभन बन कर उस के हृदय में

चुभती रहेगी । एक ऐसी चुभन जो उसे व्याकुल बनाए रखेगी और आने वाले दिनों की कटुता की कल्पना मात्र से उसके माथे पर पसीना आ गया । उस ने पसीना पूंछा और चुप चाप पांव लटका कर खाट पर लेट गया। इतने में एक ओर से दमयन्ती भी आ गई । उस ने सुरन्द्र की कमीज की जेब में अपना रूमाल देखा तो चाहा कि चुप-चाप पीछे से हाथ बढ़ा कर जेब से रूमाल खेंच ले । परन्तु सुरेन्द्र भी बहुत चतुर था। उस ने तुरन्त दमयन्ती की नियत को ताड़ लिया और उस के बढ़ते हुए हाथ को अपने हाथ में पकड़ लिया । दमयन्ती काँप उठी । सुरेन्द्र मुस्करा कर कहने लगा,

"यह चोरी कब से करने लगी?"

"पहली ही चोरी और पहला ही फाहा (फांसी)"

"परन्तु तुम्हें चोरी करने की क्या आवश्यकता थी । तुम्हारा ही तो माल था। मांग लेती तो क्या मैं नहीं देता।"

"अच्छा अब मांग लेती हूं । हाथ तो छोड़ दो।"

"मांग लो, फिर।" सुरेन्द्र ने हाथ छोड़ते हुए कहा।

"माँग तो रही हूं।"

"ऐसे नहीं।"

"फिर ?"

"हाथ पसार कर प्रार्थना कीजिए कि श्री सुरेन्द्र कुमार जी कृपया मेरा रूमाल लौटा कर कृतज्ञ कीजिए ।"

"अब यह परेड तो मुझ से होने से रही।"

"तो फिर रूमाल भी मिल चुका।"

"स्वयं ही दो गे।" और दमयन्ती मुंह बनाती हुई एक ओर चली गई । दमयन्ती के चले जाने के पश्चात् सुमित्री ने कहा।

"दे दीजिए बेचारी का रूमाल अन्यथा बेसुद्ध हो जाएगी।"

"ऐसी मूर्छित होने वाली नहीं।" सुरेन्द्र ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

मेरा रूमाल होता तो मैं कभी न मांगती।"

"जी"

"खेद है कि मेरे पास इस समय कोई अच्छा रूमाल नहीं अन्यथा अभी आप को भेंट कर देती।"

"मेरा दुर्भाग्य है।"

"एक नैपकिन (छोटा रूमाल) है, यदि आप पसन्द करें तो........"

"आप का दिया हुआ तो 'एक कण भी बहुमूल्य होगा। यह तो रूमाल है।" यह कह कर सुरेन्द्र ने सुमित्री के हाथ से नैपकिन लेकर आँखों से लगाया और फिर नाखूनों की महंदी को बचा कर जेब में डाल में लिया।

"आप अभी कुछ दिन और ठहरेंगे न?" सुमित्री ने कुछ देर के बाद पूछा।

"जी नहीं, कल वापस जा रहा हूं"

"इतना शीघ्र?"

"क्या करूं और छुट्टी नहीं है"

और सुरेन्द्र ने देखा कि सुमित्री के मुख पर एक गम्भीर चिन्ता छा गई है। सुमित्री की निराशा ने उसे भी दुखी कर दिया और वह परेशान होकर चुप हो गया।

(५)

रात को फिर सुरेन्द्र पर सास की कृपाएं होने लगीं और सुरेन्द्र के विरोध के बावजूद वह उसे सोने के लिए इस घर में

ले आई। सुरेन्द्र की यह दशा थी कि उसका अंग प्रत्यंग कप-कपा रहा था। उसके बस में होता तो वह सास को धकेल कर एक ओर कर देता और स्वयं भागता हुआ दमयन्ती के पास पहुंच जाता। परन्तु उसकी सास समाज का वह भयानक देव था जिसने सहस्रों महत्वकांक्षियों की आकांक्षाएं पांवों के तले मसली हैं। वह चुप चाप उसके पीछे चलता गया, परन्तु मन में दृढ़ निश्चय कर लिया कि आज चाहे कुछ ही हो जाए वह दीवार के ऊपर से कूद कर भी दमयन्ती की मौसी के घर पहुंच जाएगा। उसने दिन में दमयन्ती की मौसी का घर देख लिया था। और अब आंखें बन्द कर के भी वहां पहुंच सकता था। छत पर पहुँचा तो निराशा का एक और स्वरूप देखा। आज वहां सोने वाले तीन व्यक्ति और भी थे। वह सोचने लगा दो होते तो राहु केतु मान लेता। अब यह तीन हैं। इनको क्या समझें ? क्या यह समझ लें कि उसके भाग्य में तीन काने लिखें हैं। और उसका जी चाहा कि तीनों की एक-एक आंख फोड़ दे।

सुरेन्द्र को देखते ही वह तीनों चिल्ला उठे "आओ सुरेन्द्र।" और अपनी २ खाट पर उसके लिये स्थान बनाने लगे। सुरेन्द्र ने एक मस्त अंगड़ाई ली और कहा,

"मुझे तो नींद आ रही है।"

"तुम्हें सोने कौन देगा ?" एक ने चंचलता से कहा, "निकालो ताश।"

"आप ताश ले लीजिए मुझे नींद आ रही है।" सुरेन्द्र ने ताश उनकी ओर फेंकते हुए कहा।

"फिर वही बात" और एक व्यक्ति उसे भुजा से पकड़

कर खाट तक ले आया। सुरेन्द्र अब इन्कार न कर सका परन्तु उसने मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह अधिक से अधिक आध घंटे तक खेल कर उठ जाएगा। और जब ताश प्रारम्भ हुई तो उसकी इच्छा के विपरीत रात के दो बज गए। जब वह बिस्तर पर पहुंचा तो थक कर इतना चूर हो चुका था कि सिर टकरा २ कर फोड़ लेने को चाहता था। उसने धीरे २ सिर खाट पर पटका भी परन्तु सिर का लकड़ी से क्या मुकाबिला ? उसने सिर तकिये पर रख लिया और फिर न जाने उसे क्यों नींद आ गई।

प्रातः काल जब वह उठा तो उसका मन क्रोध से तिलमिला रहा था। जी चाहता था कि जो भी सामने आए उससे लड़ पड़े। दुर्भाग्य से सबसे पहले उसकी सास सामने आई और वह क्रुध होने पर भी दांत पीस कर रह गया। उसने अपनी सास से कहा,

"मेरे जाने के लिये व्यवस्था करवा दीजिए"

"क्या अभी जाओगे"

"जी"

"इस समय तो ताँगा मिल नहीं सकेगा।"

"तो फिर घोड़े की व्यवस्था करवा दीजिए।"

"हां यह सम्भव है।"

"उसकी सास चली आई तो उसने थकान में अंगड़ाई ली और फिर स्नान करने के लिये चला गया। उस दिन वह साबुन, तेल, तौलिया भी न मांग सका। वस्तुस्थिति यह थी कि उसमें कमला और दमयन्ती के सम्मुख जाने का साहस न था। वह उस खाने के समीप जाने से डरता था जिसे वह

खाना वर्जित हो। वह सोचता कि इस वातावरण में उनके सामने जाने का लाभ? यही होगा न कि निराश मन को और निराशा होगी। यह निराशा जीवन भर उसको न छोड़ेगी। फिर वह स्वयं ही उनको क्यों ढूंढे।

वह देर तक नहाता रहा। इतना कि गर्मी में भी उसका शरीर ठिठुरने लगा और फिर वह कपड़े पहिन कर धीरे २ घर की ओर चल दिया। यथा सम्भव देर करना चाहता था ताकि जब वह घर पहुंचे तो घोड़ा तैय्यार हो। घर पहुंच कर उसको पता चला कि घोड़ा दो बजे से पहिले नहीं मिल सकता। वह निराश होकर कमरे में एक खाट पर लेट गया। सम्भवतः रात को अधिक देर तक जागते रहने के कारण उसे लेटते ही नींद आ गई।

लगभग १२ बजे वह उठा, खाना खाया और सब की आँखों से छुप कर पनवाड़ी की दुकान पर चला गया। पान खा कर वहां देर तक गप्पें हांकता रहा। जब वह लौटा तो दो बज रहे थे। घोड़ा गली में तैय्यार खड़ा था। वह अपना अटैची केस उठा लाया। इतने में दमयन्ती, कमला और सुमित्री भी आ गईं। उन्हें देख कर सुरेन्द्र के मन में एक हूक सी उठी। उसको ऐसे लगा किसी ने उसके हृदय को चिनगारियों पर रख दिया हो। वह उनसे अलग २ मिलने से घबराता था और यहां तो तीनों एक साथ थीं, और सबकी सब इससे अलग कुछ बातें करने को इच्छुक थीं। उसका गला सूखने लगा। उसने सोचा कि वह इनमें से किसी से भी कोई बात न कर सकेगा। रूखे गले से उसने कहा,

"पानी"

"पानी" दमयन्ती ने कहा और अपने घर की ओर चल दी।

"पानी" कमला ने कहा और अपने घर की ओर भाग गई।

"पानी" सुमित्री ने कहा और निराशा से अपना मुख सुरेन्द्र के समीप ले जाकर बोली, "काश, मेरा घर भी पास ही होता।"

सुरेन्द्र ने सावित्री की ओर मुंह करके धीरे से उत्तर दिया "आप यहीं रहिए। यही पर्याप्त है"

"इतने में दमयन्ती सिकंजबीन का गिलास ले आई। सुरेन्द्र ने उसके हाथ से गिलास लिया ही था कि कमला भी आ पहुंची और सुरेन्द्र को दमयन्ती के हाथ से गिलास लेता देख निराश हो कर लौटने लगी। सुरेन्द्र ने बढ़ कर उसके हाथ से भी गिलास ले लिया और एक के बाद एक दोनों पी गया। सुमित्री ने पास से दीर्घ निःश्वास भर कर कहा। "मैं ही अभागी रह गई।" सुरेन्द्र ने दोनों को गिलास लौटाते हुए धीरे से सुमित्री को उत्तर दिया,

"आप का दर्शनामृत ही पर्याप्त है।"

"और सुमित्री ने लजा कर गरदन झुका ली।

"सास तथा अन्य कई बूढ़ियों का आशीर्वाद उसे गालियों से भी बुरा लगा। और वह ऐसा अनुभव कर रहा था कि उन्होंने उसे जो रुपये उसकी हथेली पर रख दिए थे वे उसकी हंसी उड़ा रहे हों। उसने जल्दी से उन्हें जेब में डाल लिया और फिर लपक कर घोड़े पर सवार हो गया। सबसे पृथक होते समय उसे अपनी निराशाएं याद आईं और उसकी

आंखों में अश्रु भर आए । उसने रूमाल से आंखें पोछते हुए सबसे विदाई ली। और घोड़े को धीरे २ चलाता हुआ झेलम की ओर चल दिया। चलते २ उसने सुना कि एक वृद्धा उसकी सास से कह रही थी।

"बड़ा मुहब्बती (प्रेम करने वाला) लड़का है।"

सुरेन्द्र को लगा कि यह वृद्धा स्त्री जाते जाते भी उसे गाली देने से नहीं चूकी। उसने क्षुब्ध हो कर निचला होंठ दांतों से काट लिया और सोचने लगा कि उस स्त्री को ऐसा कहने का क्या अधिकार था? पहले ही क्या वह प्रेम के हाथों कम कष्ट उठा रहा है? और यह स्त्री अब प्रेम की फटकार उसके मुख पर जमा देना चाहती है। उसको अपने अन्दर उस व्यक्ति के विरुद्ध एक भयानक शत्रुता पैदा होती महसूस हुई जिसने कहा था कि प्रेम स्वर्ग का उत्तम पुरस्कार है। यदि यही स्वर्ग का सर्वोत्तम पुरस्कार है तो ऐसे स्वर्ग को दूर से ही नमस्कार। उसका जी अब इस पुरस्कार से भर चुका। सहसा उसको ध्यान आया कि उसका जी कहाँ भर चुका । वह तो अभी भी वैसा ही भूका है । सम्भवतः पहले से भी अधिक। प्रेम के स्वर्ग में जाकर भी वह लाभ न उठा सका । सम्भवतः इसी दुनिया ने उसे घबरा दिया। उसकी तृष्णा बढ़ कर निराशा का रूप धारण कर चुकी थी। निश्चय ही वह संसार का सबसे अभागा मनुष्य है अन्यथा वह तीन २ चन्द्रवदन युवतियों के समीप रह कर भी अपने मन को प्रेम की ज्योति से देदीप्यमान करने में असमर्थ न रहता। फिर उसे अपनी कायरता पर क्रोध आने लगा । वह अपने आप को कोसने लगा, "अरे कायर ! तू प्रयाग (गंगा ,यमुना, और सरस्वती का संगम)

जा कर भी प्यासा लौटा। त्रिवेणी पर भी तृष्णा तृप्त न कर सका। बहती गंगा से दो चुल्लू पानी न भर सका। उसे ऐसा लगा कि सूर्य्य की तपती हुई किरणें उस पर फटकार की वर्षा कर रही हैं कि ओ कायर! स्वर्ग में तीन तीन अप्सरायें पाकर भी तू निराश लौट रहा है। तू है ही नारकीय और इसी के योग्य है कि नरक की अग्नि में जलता रहे। उसे महसूस हुआ कि सूर्य्य रश्मियों ने अपनी गर्मी नरक की अग्नि से प्राप्त की है। और वह शीघ्र ही उसे फूंक कर रख देंगी। उसने घबरा कर माथे से पसीना पोंछा। उसके साथ ही उसने देखा कि दमयन्ती का रेशमी रूमाल उसके हाथ में है। उसने जेब में हाथ डाल कर सुमित्री का नैपकिन भी निकाल लिया और सोचने लगा कि यही उसके प्रेम का फल है, यही उसकी प्रीत के स्मृति चिन्ह हैं। सहसा उसे अपने मेज की ड्राज याद आई जिसे वह हर समय ताला लगा कर रखता था। कल्पना ही कल्पना में उसने देखा कि वह मेज़ के पास कुर्सी पर ड्राज़ खोले अकेला बैठा है और एक एक करके उसमें सभी वस्तुएं निकाल रहा है। सुरजीत का वह चाकलेटों का खाली डिब्बा वह छोटी बड़ी सुईयों का टूटा हुआ रेकार्ड, उर्मिला की चित्रों वाली पुस्तक, शकुन्तला के बहुत से रूमाल, नाहीद का चित्र, स्मरणा का हेयरपिन और पत्र। उसने सोचा कि अब उसके प्रेम के संसार में दमयन्ती के रूमाल और सुमित्री के नैपकिन की वृद्धि हो जाएगी—और—बस उसके सीने में एक हूक सी उठी उसे एकाएक गालिब का कथन स्मरण हो आया।

"चन्द तसावीरे बुताँ व चन्द एक ख़तूत
बाद मरने के मेरे घर से यह सामां निकला।"

और उसने सोचा कि उसकी भी यही दशा होने वाली है। नहीं, नहीं उसके प्रेम का मार्ग सदा इसी प्रकार कण्टकाकीर्ण नहीं रह सकता और उसने अपनी दृष्टि ऊपर उठा कर अपना भावी मार्ग निहारा तो देखा कि वह नाले के निकट पहुंच चुका है। परन्तु उस दिन वाला तुफानी नाला अब केवल कुछ गजों में बह रहा था। सुरेन्द्र ने सोचा कि उसकी उत्साह दायक आकांक्षाओं की भांति यह भी पदाक्रान्त हो चुका है।

उपसंहार

सुरेन्द्र इन दिनों कुछ निराश और क्षुब्ध है परन्तु सम्भव है कि उसका जीवन एक बार फिर खिले और हम अपने पाठकों के सामने एक ऐसी ही और सम्भवतः इससे भी अधिक रस-पूर्ण कहानी प्रस्तुत कर सकें। अभी आप भी मेरे साथ मिल कर प्रार्थना करें कि वह शीघ्र बीती घटनाओं की कटुता को भुला कर आगामी घटनाओं के हर्ष और मोद से खूब खेलें।